आधी दुनिया

वर्ष-30, अंक -1, जनवरी-मार्च 2024

महिला शिक्षण सामग्री

जलवायु संकट और महिलाएं

पेड़ को जंगल होने दो

सुनी ही होगी तुमने
वो कहानी
सुनी है तुमने
वो कहानी
काट रहा था
वही डाली
जिस पर वह बैठा था

वैसी ही है
तुम्हारी भी कहानी
तुम भी बना रहे हो
एक और हड़प्पा

तुम्हारे प्लास्टिक
धरती का दम घोंट रहे हैं
तुम्हारे कल-कारखाने
नदियों में जहर घोल रहे हैं
तुम्हारी ध्वनियों ने
आलोङ[1] को गूंगा बना दिया है
पंछियों की उड़ान छीन ली है

केलुङ[2] और किड़ोः[3]
लौट-लौट कर पूछ रहे हैं तुमसे
कहां जाएं हम
कहां रहें हम

जिन पेड़ों ने
बांध रखी है यह धरती
उन्हीं को उखाड़ते हो
लग्जरी गाड़ियों
और व्यापार-बाजार के लिए
उजाड़ते हो

मत भूलो
कोई एक पेड़
सिर्फ एक पेड़ भर नहीं है
वह फूल है
फल है
धरती का बल है

नहीं रहेंगे पेड़
तो विशाल समंदरों वाले इस ग्रह में
धरती को कौन बांध कर रखेगा
तुम्हारे जैसे हर जीव को
आसरा कौन देगा

पानी के घर हैं पेड़
मिट्टी और पानी को जोड़ने
बांधने वाले हैं मेंड़
इसलिए फूलों को फल
फलों को पेड़
और पेड़ को जंगल होने दो।

- वंदना टेटे

1. आलोङ (खड़िया भाषा) = गीत
2. केलुङ (खड़िया भाषा) = हाथी
3. किड़ोः (खड़िया भाषा) = बाघ

वर्ष-30, अंक -1, जनवरी-मार्च 2024

आधी दुनिया

संपादक
रोज केरकेट्टा

संपादक मंडल
सालगे मार्डी
सुनील मिंज
श्रावणी
शशि बारला

कलापक्ष
इंडिजिनोग्राफिक्स

संपादन कार्यालय
संवाद
301/ए, उर्मिला इन्क्लेव
पीस रोड, लालपुर
रांची - 834001 (झारखंड)
फोन - 0651-2530356
E-mail : **sarjomsamvad@gmail.com**
Website : **www.samvad.net**

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

रोज केरकेट्टा द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा आई.डी.पब्लिशिंग, रांची द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार

03 जलवायु परिवर्तन और आदिवासी जीवन शैली **सावित्री बड़ाईक**
05 महिलाओं पर वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन के खतरे **किरण**
07 बेखौफ **वंदना टेटे**
08 जलवायु परिवर्तन : आम जनमानस पर प्रभाव **डॉ. सचि कुमारी**
11 जलवायु-संकट का ग्रामीण महिलाओं पर कुप्रभाव **घनश्याम**
12 जलवायु परिवर्तन पर न्यायसंगत लैंगिक दृष्टिकोण **श्रावणी**
15 तापमान बढ़ने का खतरा और महिलाएं **शशि बारला**
17 जलवायु संकट का कृषि पर प्रभाव **स्वाति शबनम**
18 एक युवा जंगल **अशोक वाजपेयी**
19 बेहतर विकल्प है जैविक खेती **मालती देवी**
21 आशा की कहानी : जलवायु परिवर्तन और महिलाओं का संघर्ष **लक्ष्मी कुमारी**
23 जलवायु संकट से जूझते बच्चे **ज्योति कुमारी**
25 दोहरे बोझ से जूझती महिलाएं **सुषमा देवी**
26 पर्यावरण और प्रदूषण **रेणु कुमारी**
27 विकल्प की तलाश **दीपमाला**
28 जलवायु परिवर्तन और महिला स्वास्थ्य **आमेना खातून**
29 सूखे से सहमी खेती और भूख की चपेट में महिला **सीता देवी**
30 अभी खूँटी में टाँगकर रख दो माँदल **निर्मला पुतुल**
31 झारखंड में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर चुनौती **गुलाब चंद्र**
33 जलवायु संकट के राजनीतिक मायने **पल्लव आनंद**
35 आदिवासी साहित्य में पर्यावरण संघर्ष **संजय कुंदन**
38 संवाद की गतिविधियां **आधी दुनिया डेस्क**

संपादकीय

जलवायु परिवर्तन बनाम जलवायु संकट

यह बहस जब दुनिया में जोरों से चल रही हो कि जलवायु संकट आज की सबसे विकराल समस्या है तब यह बात भी समझने की जरूरत है कि 'जलवायु परिवर्तन' और 'जलवायु संकट' में क्या अंतर है? अमूमन आज दोनों में घालमेल कर दिया जाता है। आइए, इसे समझें :

जलवायु परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह निरंतर जारी रहता है। प्रकृति में परिवर्तन उसकी संतुलित गति से निर्धारित होता है। जिस प्रकार क्षितिज, जल, पावक, गगन और समीर के पंचतत्व से निर्मित शरीर का निर्माण और विकास होता रहता है उसमें संतुलन ही शरीर को स्वस्थ और सुंदर बनाता है उसी प्रकार इन पंचतत्वों के संतुलन और सहयोजन से प्रकृति का परिवर्तन संतुलित रहता है। जब तत्वों के साथ इंसान छेड़छाड़ करता है या उसे विनष्ट करने का प्रयास (दुस्साहस) करता तब प्रकृति का ताना-बाना बिखरने लगता है और वह परिवर्तन विपरीत दिशा में गतिमान होने लगता है या अपनी स्वाभाविकता खोता चला जाता है – यहां से शुरू होता है परिवर्तन का विकृत रूप – जिससे संकट पैदा होता है – जगत, जीवन और जीविका में।

आज यही हुआ है। यही हो रहा है। मानव जो प्रकृति का ही एक अंश और अंग है यह भूलता जा रहा है कि प्रकृति के पंचतत्वों (पंचभूत भी कहते हैं) के विनष्ट की करने की अंधी प्रक्रिया, न सिर्फ प्रकृति को विनष्ट कर रही बल्कि मानव और मानवेत्तर प्राणियों को भी छिन्न-भिन्न और विनष्ट कर रही है। यही प्रक्रिया जल और वायु के संतुलन को बेतहाशा बिगाड़ रही है – जो जलवायु संकट के रूप में दुनिया के सामने मुंह बाये खड़ा है।

ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी मानव द्वारा विकसित एक गवेषणा है जिसका सदुपयोग प्रकृति के रहस्यों को समझकर मानव जीवन, मानवेत्तर प्राणियों और प्रकृति को और समृद्ध तथा सुपोषित बनाने में होना था लेकिन हो रहा है उल्टा। ज्ञान को इंसान के एक तबके ने प्रकृति पर विजय पाने के लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया जिसके लिए विज्ञान और तकनीकी का सहारा लिया गया। इन दोनों के बल पर इंसान उसी पेड़ (प्रकृति) को काटना शुरू किया जिस पर चढ़ कर जीवित था। फूल-फल रहा था।

परिणामस्वरूप आज दुनिया और दुनिया के लोग जलवायु संकट झेलने को विवश हैं। स्थिति अब त्राहिमाम की हो गई है। यूएन से लेकर दुनिया के सभी महत्वपूर्ण संस्थानों ने इस पर सोचना शुरू किया है लेकिन अधिकांश चिंतन चिप्पी साटने की तरह है। बुनियादी चिंतन और आमूलचूल परिवर्तन (मानव जीवन शैली और कथित विकास) पर सोचे बिना इसका समाधान संभव नहीं दिखता।

आइए, अपने पंचतत्वों को बचाने के लिए प्रकृति के पंचभूतों को बचाएं। मनुष्य और प्रकृति के संतुलन में ही छिपा है जलवायु संकट का समाधान!

जलवायु परिवर्तन और आदिवासी जीवन शैली

सावित्री बड़ाईक

वैश्वीकरण के इस दौर में प्रकृति के हर अवयव को पूंजी और बाजार से जोड़कर देखा जा रहा है। पूंजीवादी-व्यवस्था प्राकृतिक संसाधनों के दोहन, अमेजन के जंगलों को काटे जाने, जलाये जाने, साथ ही देश में प्राकृतिक जंगलों के विनाश के कारण संपूर्ण विश्व का अस्तित्व खतरे में आ गया है। 17 मई 1992 को 'द हिन्दू' में प्रसिद्ध चिंतक और लेखक के.बी. नारायण ने लिखा है कि 'धरती एक अत्यधिक बीमार ग्रह बन गई है। जिसका तुरंत उपचार आवश्यक है। पृथ्वी पर हर ओर प्रलय का खतरा मंडरा रहा है। यदि इसे न रोका गया तो पूरा ग्रह रहने लायक नहीं रह जाएगा।' वैश्विक ताप जलवायु परिवर्तन भीषण सूखा, असमय वर्षा, असमय हिमपात से पूरी दुनिया प्रभावित हो रही है।

आदिवासी पुरखा गीतों में प्रकृति, पर्यावरण चेतना पूर्व से ही मौजूद है। मुण्डारी भाषा में एक गीत है जिसका आशय है 'जंगल के वासी जंगल की चिंता करते हैं। नदी तट के वासी नदी की चिंता करते हैं। पत्ते लकड़ी के लिए जंगल की चिंता करते हैं। मछली केंकड़ा के लिए नदी की चिंता करते हैं।'

प्रश्न यह उठता है कि प्रकृति हितैषी आदिवासियों से वर्तमान उपभोक्तावादी समाज को कुछ सीखने की आवश्यकता है या नहीं। हर समाज अपने तरीके से जीवन जीना चाहता है। आदिवासियों की भी अपनी जीवन शैली होती है। आदिवासी आज भी अपनी परंपरा, संस्कृति, प्रकृतिमूलक जीवन दर्शन से चलते हुए देखे जा सकते हैं। रोस्क मार्टिनेज जो महज 15 साल का किशोर आदिवासी एक्टिविस्ट है, 29 जून 2015 को यूनेस्को के जनरल असेम्बली में अपना प्रसिद्ध भाषण दिया था, उसे रेखांकित करना आवश्यक है। उसने कहा था - अपनी उन आदतों पर तत्काल रोक लगा देना चाहिए, जिसके चलते हम सिर्फ लेते हैं, देते कुछ भी नहीं, और यह समझने की कोशिश भी नहीं करते कि किस हद तक हम अपने ग्रह को नुकसान पहुंचा रहे हैं। यह लालच है, धरती को नोच नोचकर नष्ट कर देनेवाला विध्वंसक सोच है। याद रखना चाहिए कि हम सब इसी धरती के हैं। मूल वाशिंदे हैं और हम सब का जीवन उससे अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

अनियंत्रित मानसून, सूखा, जल संकट से बचाने के लिए आदिवासी जीवन शैली, आदिवासी जीवन मूल्य और प्रकृति के प्रति उनके लगाव को दुनिया के लिए मिसाल के तौर पर देखा जा सकता है।

आदिवासियों के लिए जंगल जीवन है। उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा समृद्धि के लिए प्रकृति प्रदत्त इस धरती का बंटवारा नहीं किया। आदिवासी लकड़ियों का अवैध व्यापार नहीं करते। सूखी लकड़ियों की ढेरी भी नहीं लगाते। झुरी टूटी सूखी टहनियों को सहेजकर चुनकर मचान में रखने की परंपरा है। झारखंड क्षेत्र में सदियों से आदिवासियों की रिहाइश के कारण जंगल, जैव विविधता, जड़ी-बूटियां अभी भी काफी हद तक बचे हुए हैं। उनकी मान्यता प्रकृति की धरोहर विशेषकर वनों और पेड़ों से जुड़ी हुई है। अतः पर्यावरण और वन संपदा का संरक्षण उनकी मान्यताओं के आधार पर होता आया है। सखुआ को विवाह मंडप में जगह देकर जीवन में पेड़ जंगल के महत्व को बरकरार रखा जाता है। आदिवासी पेड़ आधारित संस्कृति में सरना (सखुआ, पेड़ों का झुंड) का विशेष महत्व है। जंगल के पेड़ पौधे, जीव, फसल, गोत्र टोटम के रूप में आदिवासियों से जुड़कर उनके द्वारा संरक्षण ही तो प्राप्त कर रहे हैं। सरहुल के बाद ही जंगल के मधु, फल-फूल, रूगड़ा, खुखड़ी का सेवन किया जाता है, यहां पर उल्लेखनीय है कि आदिवासी विश्वास करते हैं कि

जल, जंगल, कीट पतंग, पशु, पक्षी जलीय जीव केंकड़ा मछली घोंघा, पृथ्वी में पहले विकसित हुए और इंसान बाद में। चूंकि सृष्टिकर्त्ता ने इंसान को सर्वाधिक समझदार और जिम्मेदार बनाया है। अतः उसकी भूमिका पृथ्वी के संरक्षण की होनी चाहिए।

सर्वविदित है कि आदिवासियों की आर्थिक संरचना प्रकृति आधारित है। वे प्रकृति से उतना ही लेते हैं जितने की उन्हें जरूरत है। माटी, काष्ट, बांस के घर, छप्पर, बांस और जंगल की झाड़ियों से बारी बगान बनाकर जीवनयापन करते आदिवासी लाह, महुआ, सरई बीज, गोंद (धुवन) शहद, चिरौंजी डोरी, केन्द, कत्था, जड़ी बूटियों, फल, फूल, कंद मूलों के लिए जंगल पर निर्भर रहते आए हैं। वे अपने प्रतिदिन की आवश्यकता को बुद्धिमतापूर्वक उपयोग करते आये हैं। वे प्रायः सखुआ, मड़ुआ, आम, करंज, जामुन केन्द के वृक्षों को नहीं काटते हैं।

जलावन के लिए हमेशा सूखे और मृत वृक्षों पर ही कुल्हाड़ी चलाते हैं। काठ के लिए आरी लेकर पेड़ को सामूल नष्ट करने की प्रवृत्ति उनमें नहीं है। अंग्रेजों, ठेकेदारों मुनाफाखोरों के आने के पहले तक झारखंड क्षेत्र में वन, जंगल, प्रकृति, पर्यावरण अच्छी स्थिति में थे। सूखी टहनियों, सूखे पत्तों डहुरा से धान उसना, बरका करते आदिवासी आज भी देखे जाते हैं। जहां आदिवासी हैं वहां जंगल बचे हैं। क्योंकि वे जंगल को नष्ट नहीं करते।

प्रकृति हितैषी आदिवासियों से सीखने की आवश्यकता है। जिनकी चिंता में पूरी सृष्टि और प्रकृति है। क्या कटते वृक्ष, मरती नदियां, मरते तालाब, सूखते कुएं, अस्तित्व खोते झरना, डांड़ी, डोभा, समतल होते पहाड़ वर्षाकाल में पहाड़ों से आंख चुराते बादलों की अनदेखी की जा सकती हैं?

प्रकृति और अपनी मूल संस्कृति को बचाये रखना आदिवासी जीवनशैली का प्रमुख अंग है। आदिवासियों ने हमेशा सहजीविता को महत्व दिया है न कि बर्चस्व स्थापित करने को नदी पहाड़, पेड़-पौधे, चट्टान सभी के अस्तित्व की चिंता आदिवासियों के सिवा कौन करता है?

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति ने संसार भर के प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन को बढ़ावा दिया है। वैश्वीकरण के इस दौर में खजिन संपदा से भरे पहाड़, नदी, दोन डांड़ टुकू, टंगरा आहर, पोखर पेड़, पौधा, जड़ी-बूटियों यानि प्रकृति के हर अवयव को पूंजी और बाजार से जोड़कर देखा जा रहा है। दुनिया के सभी पर्यावरणविद, लेखक, चिंतक एक स्तर से आग्रह कर रहे हैं कि पर्यावरण जलवायु परिवर्तन वैश्विक ताप पर तत्काल चिंतन की आवश्यकता है। साथ ही मिलजुल कर सर्वमान्य हल निकालना भी अनिवार्य हो गया है।

प्रकृति को बचाए रखने की समझ आदिवासियों में सदियों से मौजूद है। 2 नवंबर 2009 को दिल्ली में प्रकाशित होनेवाले अखबार 'जनसत्ता' में 'हम भर सकते हैं धरती का घाव' नामक शीर्षक से आदिवासियों का एक आलेख छपा था। उसके अनुसार देश के आदिवासियों का कहना है कि जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से निपटने के लिए अगर उन्हें पूरी छूट दी जाए तो अपने परंपरागत ज्ञान और दक्षता से वे धरती को बचा सकते हैं।

आदिवासी और प्रकृति के बीच सहज अस्तित्व का आत्मीय रिश्ता है। विकास की विभिन्न परियोजनाओं के कारण इस सहज अस्तित्व को ही समाप्त करने की निरंतर कोशिश की जा रही है। आखिर यह विकास क्या है, जो आदिवासियों की रिहाइशी इलाके जंगलों, जलस्रोतों, जैव विविधता को लीलने (निगलने) के लिए आतुर हैं। प्रसिद्ध गांधीवादी चिंतक विचारक अनुपम मिश्र अपनी पुस्तक 'साफ माथे का समाज' में 'विकास' शब्द के बारे में बड़ी साफगोई से स्वीकार करते हैं ''ठीक इतिहास तो मालूम नहीं कि यह शब्द पहली बार कब आज के अर्थ में शामिल हुआ है, पर जितना अनर्थ इस शब्द ने पर्यावरण के साथ किया है, उतना शायद ही किसी शब्द ने किया है।''

अनियंत्रित मानसून, सूखा एवं जल संकट से बचने के लिए आदिवासी जीवन शैली, आदिवासी जीवन मूल्य और प्रकृति के प्रति उनके लगाव को दुनिया के लिए मिसाल बनाया जा सकता है। इंसान को सृष्टिकर्त्ता ने सर्वाधिक समझदार और जिम्मेदार बनाया है। अतः उनकी संवेदना एवं सम्मान प्रकृति के हर सजीव-निर्जीव के प्रति होगी तभी प्रकृति और पर्यावरण शेष रहेगा। ■

महिलाओं पर वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन के खतरे

किरण

जलवायु एक ऐसा पहलू है जो दुनिया के हर इंसान के जीवन से जुड़ा हुआ है तथा जलवायु की दशा हमारे जीवन को बहुत प्रभावित करती है। इस बात का महत्व इस तथ्य से समझा जा सकता है कि अनुकूल जलवायु के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव हो पाया है, लेकिन आज मानवीय तथा कुछ प्राकृतिक गतिविधियों के कारण जलवायु की दशा बदल रही है, जो गंभीर है। हाल के वर्षों और दशकों में गर्मी के कई रिकॉर्ड टूट गए हैं – यूएन जलवायु रिपोर्ट 2019 इस बात की पुष्टि करती है कि रिकॉर्ड में साल 2019 दूसरा सबसे गर्म वर्ष था, और 2010-2019 सबसे गर्म दशक था। वर्ष 2019 में वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) तथा अन्य ग्रीनहाउस गैसें नए रिकॉर्ड स्तर तक पहुंच गई थी।

वर्तमान में जलवायु परिवर्तन की स्थिति गंभीर दशा में पहुँच रही है और पूरे विश्व पर इसका असर देखने को मिल रहा है। संयुक्त राष्ट्र की जलवायु रिपोर्ट (climate report) में बताया गया है कि जलवायु परिवर्तन का पर्यावरण के सभी पहलुओं के साथ-साथ वैश्विक आबादी के स्वास्थ्य और कल्याण पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन की अगुवाई में तैयार रिपोर्ट में जलवायु परिवर्तन के भौतिक संकेतों – जैसे भूमि और समुद्र के तापमान में वृद्धि, समुद्र के जल स्तर में वृद्धि और बर्फ के पिघलने के अलावा सामाजिक-आर्थिक विकास, मानव स्वास्थ्य, प्रवास और विस्थापन, खाद्य सुरक्षा और भूमि तथा समुद्र के पारिस्थितिक तंत्र पर प्रभाव का दस्तावेजीकरण किया गया है।

बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के कारण भी पृथ्वी के तापमान

में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। जलवायु रिपोर्ट के अनुसार 1980 के दशक के बाद आगामी प्रत्येक दशक, 1950 से किसी भी दशक की तुलना में अधिक गर्म रहा है। हालिया पूर्वानुमान के अनुसार ग्रीनहाउस गैसों के स्तर में वृद्धि जारी है, जिसके कारण पृथ्वी के तापमान में लगातार वृद्धि हो रही है, जो यह संकेत दे रही है कि आने वाले पांच वर्षों में वैश्विक तापमान का एक नया रिकॉर्ड मिलने की आशंका है।

आज अगर हम ग्लोबल वार्मिंग की बात करने को मजबूर हो रहे हैं तो यह इसलिए कि अब अगर बात नहीं हुई तो यह हमारे जीवन का संकट बन जाएगा। ग्लोबल वार्मिंग से न केवल हमारे जंगल, पहाड़, नदियों को घाटा पहुँच रहा है, ये सभी नष्ट हो रहे है बल्कि इनके खत्म होने से मानव जीवन पर ही संकट गहराता जा रहा है। इस वैश्विक तापमान में वृद्धि से तूफान, बाढ़, जंगल की आग, सूखा और लू के खतरे की आशंका बढ़ जाती है। कुछ गैस जैसे – कार्बन डाइऑक्साइड और मिथेन की मात्रा भी वातावरण में बढ़ जाती है। इसके कारण जलवायु परिवर्तन

होना निश्चित है। यह हमारे स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक है। इसके असर से हमें सांस लेने में कठिनाई होने लगती है, फेफड़ों में संक्रमण बढ़ जाता है, जिससे अस्थमा के रोगियों के लिए कई तरह की समस्या बढ़ जाती है। तेज गरम हवाओं के कारण फसल तो बर्बाद होती ही है, बाढ़ की समस्या भी बढ़ जाती है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण आज मानव जीवन परेशान हो रहा है। अंटार्कटिका में पर्वतीय हिमनद सिकुड़ रहे हैं। ज्यादा गाड़ियों के आवागमन के कारण, डीजल पेट्रोल के प्रदूषित धुएं के कारण बर्फ सफेद से काली हो रही है। नदियों का उद्गम स्थल सूखता चला जा रहा है। गर्मी कितनी बढ़ गई है, नदियां सूख कर नाला बन रही है। जंगल से पेड़ कट रहें है और कंक्रीट के जंगल खड़े हो रहें है।

वैसे तो ग्लोबल वार्मिंग प्रकृति प्रदत्त भी है लेकिन मानव ने अपने सुख सुविधा एवं ऐशो आराम के लिए ऐसे-ऐसे काम किए जिससे यह आज उसके लिए ही घातक हो गई है। आज के इस बदलते पर्यावरण प्रदूषण को हमने खड़ा किया है। जैसे पृथ्वी के गर्भ से खनिज सम्पदा का अतिशय खनन या दोहन। यह खनन प्रक्रिया प्रकृति के खिलाफ जाकर ही किया जाता है। चाहे वह कोयला खनन, लौह अयस्क आदि कोई भी खनिज हो। ईंधन का अधिकाधिक उपयोग भी वातावरण को प्रभावित करता है।

वर्ष 2021 में, विश्व भर में जंगलों में विनाशकारी आग, झुलसा देने वाली ताप लहरों, भीषण बाढ़ व सूखे की घटनाओं के बीच, अन्तर-सरकारी आयोग की नई रिपोर्ट बताती है कि जलवायु परिवर्तन से लड़ाई में, दुनिया एक बेहद नाज़ुक मोड़ पर पहुँच रही है, जो किसी भी जीव जन्तु के लिए घातक है।

एक सर्वेक्षण के अनुमान के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण विशेष रूप से वे लोग प्रभावित होते हैं जो निर्धन हैं, जो मुख्यतः प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं और जिनके आपदाओं के शिकार बनने का जोखिम सबसे अधिक है। इनमें महिलाएँ भी स्वाभाविक रूप से शामिल मानी जाती हैं। यह आम तौर पर देखा गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण लैंगिक हिंसा में बढ़ोत्तरी की संभावना बढ़ जाती

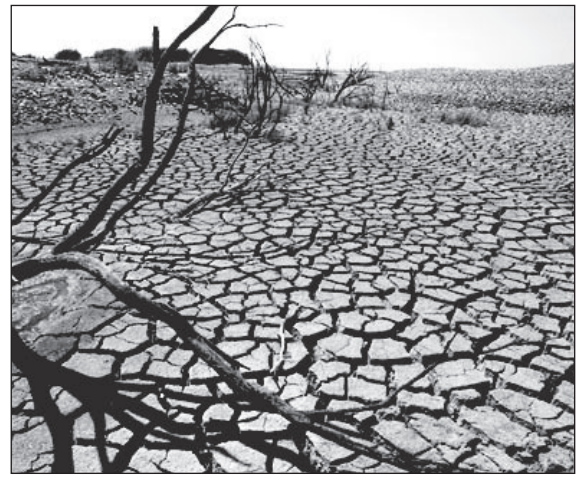

है। जलवायु परिवर्तन के कारण आबादियों का विस्थापन होना स्वाभाविक हो जाता है, जिसके कारण भी महिलाओं व लड़कियों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ता है, और इस कारण भी लिंग आधारित हिंसा का शिकार होने का जोखिम बढ़ जाता है। घर-परिवार चलाने के लिये संसाधनों का इन्तज़ाम, जैसे – जल, ईंधन के लिये लकड़ी इत्यादि का प्रबन्ध करने की ज़िम्मेदारी आमतौर पर महिलाओं की ही होती है और अक्सर इनकी तलाश में उन्हें दूर तक पैदल चलना पड़ता है, जिसके लिए उन्हें अनजान इलाक़ों में जाना पड़ता है, जहाँ उनके लिये मुश्किलें बढ़ जाती हैं।

गरीब लोगों के बीच बाल विवाह की घटनाओं में वृद्धि देखी गई है। गर्म मौसम की घटनाओं की वजह से आजीविका बर्बाद हो जाती है और निर्धनता विकराल रूप धारण कर लेती है। इन हालात में परिवार, भोजन की क़िल्लत के कारण अक्सर युवा बेटियों की जल्द शादी कराने का विकल्प चुनते हैं। इन शादियों के बदले, उन्हें अक्सर धन भी मिलता है और वे यह मानते हैं कि इसके ज़रिये लड़कियों के लिये भविष्य बेहतर हो रहा है। चाहे यह जिस वजह से भी हो, कम उम्र में शादियों में वृद्धि, उन देशों में दिखाई दी हैं जो जलवायु आपदाओं से प्रभावित हुए हैं।

इसके परिणामस्वरूप यह भी पाया गया कि जलवायु परिवर्तन के कारण प्रति 10 हज़ार बच्चों के जन्म में चार अतिरिक्त मृत बच्चे पैदा होते हैं। यह ठीक है कि इस विषय

में अभी और अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है, मगर तथ्यों से मिलने वाले संकेत दर्शाते हैं कि चरम गर्मी और प्रसव का आपस में सम्बन्ध है। साथ ही मातृत्व और नवजात शिशु संबंधी कई बीमारियाँ जैसे – मलेरिया व डेन्गू बुखार आदि उभर कर आ जाती हैं। या अक्सर गर्भपात, समय से पहले जन्म होने और एनीमिया के मामले भी सामने आए हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण ज़ीका वायरस जैसी बीमारियों का फैलाव भी बढ़ सकता है। इस बीमारी में बच्चे जन्म से ही विकृति का शिकार होते हैं, उनका सिर छोटा होता है।

तापमान में बढ़ोत्तरी होने की वजह से उन मौसमों की अवधि लम्बी हो रही है, जब ऐसी बीमारियों को फैलाने वाले मच्छर सक्रिय रहते हैं और नमी भरे पर्यावरण में उनकी संख्या भी बढ़ती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण आपात परिस्थितियों की आवृत्ति बढ़ती है, यानी यौन व प्रजनन स्वास्थ्य और अधिकार सेवाओं में कटौती की जा सकती है। मगर, यौन और प्रजनन स्वास्थ्य व अधिकार सेवाएँ अगर जारी रह भी पाएँ, तो भी विस्थापित महिलाएँ व लड़कियों के लिए वे अक्सर सुलभ नहीं होती हैं। इसकी वजह से अनचाहे गर्भधारण और यौन संचारित संक्रमणों के मामलों में वृद्धि देखी जा सकती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण फ़सलें बर्बाद होने से भी यौन व प्रजनन स्वास्थ्य पर असर पड़ता है। एक अध्ययन के मुताबिक खाद्य असुरक्षा की चुनौतियों के बाद, कृषि क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को कमाई के लिये सेक्स का रास्ता अपनाना पड़ा था। इससे एचआईवी/एड्स संक्रमणों की दर में तेज़ी देखने को मिली है।

आज इंसान अपना दुश्मन आप ही हो गया है। एक बार ठहर कर मानव को अपने प्राथमिकताओं के बारे में सोचना ही पड़ेगा। उसे जंगल चाहिए या फॉर लेन, सिक्स लेन की सड़कें, उसे पहाड़ चाहिए या कंक्रीट का जंगल, उसे अच्छा, स्वस्थ्य जीवन चाहिए या नाहक की विलासिता, ऐशो आराम। अगर हम आज नहीं सोचेंगे तो समय चूक जाएगा। ■

बेखौफ

बेखौफ है नदी
पहाड़ के सीने में

बेखौफ है पहाड़
जंगल की गोद में

बेखौफ जंगल
आसमान के साये में

बेखौफ है आसमान
सृष्टि के अनंत में

बेखौफ है सृष्टि
पुरखा भाषाओं में

बेखौफ हैं पुरखा भाषाएं
सजीव-निर्जीव अभिव्यक्तियों में

बेखौफ हैं अभिव्यक्तियां
नदियों के निरंतर प्रवाह में

- वंदना टेटे

जलवायु परिवर्तन : आम जनमानस पर प्रभाव

डॉ. सचि कुमारी

किसी भी देश के जलवायु का संबंध वहाँ के रहन–सहन, आजीविका, संस्कृति, पर्व–त्यौहार, खान–पान तथा सम्पूर्ण जीवन शैली के अनुरूप होता है। जलवायु परिवर्तन का मतलब है सामाजिक–सांस्कृतिक एवं आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन। जलवायु परिवर्तन के भीषण, हृदय-विदारक परिणामों से कोई भी अछूता नहीं है मगर, निर्बल और हाशिए पर रहने वाले समुदायों, जैसे कि महिलाओं को, इनमें भी गरीब, एकल, आदिवासी, विकलांग महिलाओं को विशेष रूप से जलवायु परिवर्तन से खतरा है। जलवायु परिवर्तन के कारणों से उत्पन्न आपदा से मानवीय सहायता के जरूरतों की संख्या दोगुनी हो जाने की सम्भावना रहती है और हाशिये के लोग ऐसे सहायता तक बहुत संघर्ष के बाद पहुँच पाते हैं। रिपोर्ट बताते हैं कि पुरुषों की तुलना में, महिलाओं व बच्चों के किसी आपदा में मौत होने की सम्भावना 14 गुना अधिक होती है।

झारखंड की लगभग 80 फीसदी आबादी कृषि या इससे संबंधित क्षेत्र पर निर्भर है। इसके साथ ही झारखंड की कुल आबादी का 43 प्रतिशत, कामगार कृषि या इससे संबंधित क्षेत्र से जुड़े हुए हैं। इनमें महिलाओं की भागीदारी आधे से भी कहीं ज्यादा है। जनजातीय समुदायों की बात कहें तो कृषि के बाद प्राकृतिक संसाधनों एवं पशुपालन पर निर्भरता है और यदि इस समुदाय के सामाजिक व्यवस्था को देखा जाय तो इन कार्यों की जिम्मेदारी महिलायें ज्यादा निभाती हैं, क्योंकि निर्णय और हिस्सेदारी के मामले में यह समुदाय भी पितृसत्तात्मक है, जहाँ पारिश्रमिक आधारित श्रम को ज्यादा महत्व दिया जाता है और इसका लाभ पुरुषों को मिलता है, घरेलू कार्य जिसका कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता ये कार्य महिलाओं के हिस्से आते हैं जो उनकी आर्थिक निर्भरता को तो बढ़ाता ही है अपितु उनका स्टेटस किसी 'आश्रिता' की जैसी बनी रहती है, उसके हाथों में किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता, वह नियंत्रित होती या की जाती हैं। अन्य समुदाय की महिलाओं की भी कमोबेश यही स्थिति है परन्तु उनके पास विकल्प अपनाने के अवसर ज्यादा हैं। ऐसे में जलवायु परिवर्तन एवं आपदाओं का शिकार बनने के खतरे बढ़ जाते हैं। घर-परिवार चलाने के लिये संसाधनों का जुगाड़ करने में, उन्हें अनजान इलाक़ों में जाना पड़ता है, जहाँ उनकी मुश्किलें बढ़ जाती हैं।

झारखण्ड में कई वर्षों से अनियमित बारिश का होना, तापमान का बढ़ जाना, बारिश नहीं होना, झारखण्ड में प्रतिवर्ष मानसून वज्रपात के कारण लगभग 350 लोगों की मृत्यु हो जाना, देखा जा रहा है, जो आर्थिक गतिविधि के साथ-साथ जीवन शैली को भी प्रभावित कर रही है। झारखण्ड की महिलाओं के लिए मौसमी साग, फूल, पत्तों, खाद्य सामग्री को सुखाकर प्रसंस्कृत करके रखना और इसका स्वयं उपभोग करना और रोजमर्रा के जरूरतों को पूरा करने के लिए स्थानिक बाजार में बेचना उनके आर्थिक सुरक्षा का पुरखौती तरीका है। परन्तु कई वर्षों की स्थिति को देखा जाय तो असमय बादल छाने और बारिश की स्थिति बनी रही। 'मिसी' की अधिकतर महिलाएं जो बरी, मूढ़ी, साग, कुदरूम, फूल सुखा–बनाकर बेचती हैं, उनको आर्थिक क्षति का शिकार होना पड़ा। बरसाती खेती के समय बारिश नहीं हुई और फसल पकने के समय हुई बारिश ने धान, मडुवा, सब्जी के फसल को बर्बाद कर दिया। कृषि विशेषज्ञों के अनुसार अधिक और असमय बरसात के कारण फसलों में कीट–फफूंद ज्यादा लगते हैं, जिससे लागत खर्च बढ़ जाती है और बाजार में इसकी कीमत घट जाती है, कम बारिश से सिंचाई के अभाव में फसल होती ही नहीं और यह झारखण्ड के लोगों के लिए 'मौसमी

पलायन' का प्रमुख कारण बनता है, जो हमेशा ही बिचौलियों व अनाधिकृत नियोक्ता के नियंत्रण में होता है। कठिन परिस्थितियों में काम की तलाश, महिलाओं के शोषण का कारण बनती है और ऐसी घटनाएँ मीडिया में अक्सर छपती रहती है। जबकि इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देश एवं कई कानून लागू हैं, बावजूद इनके काम के जगह पर महिलाओं एवं गरीबों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ हमेशा से सवालों के दायरे में रहीं हैं।

वहीं दूसरी तरफ जब भी परिवार पर अतिरिक्त आर्थिक बोझ पड़ता है तब महिलाओं के हितों की अनदेखी आम बात हो जाती है, प्राथमिकता परिवार केन्द्रित हो जाती है, जिसमें पुरुषों के लिए लिये गये फैसले ज्यादा प्रभावी एवं महिलाएं उपेक्षा की शिकार होती हैं। इन परिस्थितियों में घरेलू हिंसा की घटनाएँ बढ़ जाती हैं, परिवार, पैसों की क़िल्लत के कारण अक्सर युवा बेटियों की जल्द शादी कराने का विकल्प चुनते हैं, असुरक्षित पलायन, ठगी, यौन शोषण के मामले भी बढ़ जाते हैं। एक रिपोर्ट बताता है कि कम उम्र में शादियों में वृद्धि, उन देशों में दिखाई दी हैं जो जलवायु आपदाओं से प्रभावित हुए हैं, इनमें मलावी, भारत, फ़िलिपींस, इण्डोनेशिया, लाओ पीडीआर और मोज़ाम्बीक़ सहित अन्य देश शामिल हैं* (श्रोत; UN रिपोर्ट)।

झारखण्ड जो 'मिनी कश्मीर' माना जाता रहा, इतिहास गवाह है कि सदियों से लोग यहाँ आते रहे हैं और यहाँ के होते रहे हैं, इसका प्रमुख कारण यहाँ की जलवायु है, जो अब तेजी से बदल रही है। बारहों मौसम 'एक लेदरा जाड़' अर्थात रात में पंखे की जरुरत नहीं के बराबर होना और अब रात का भी तापमान बढ़ा हुआ ही रहता है, यह परिस्थिति बिजली एवं उपकरणों के उपभोग की अनिवार्यता को बढ़ा देता है जिसके लिए हाशिये में रहने वाले लोग मानसिक व आर्थिक तौर पर तैयार नहीं हो पाए हैं, एक अतिरिक्त साधन की अनिवार्यता उनके दिनचर्या में उथल–पुथल मचा देती है। घर की बनावट, सुविधाओं का बँटवारा, तकनीकी जानकारी का अभाव आपसी रिश्ते पर हावी हो जाते हैं। जैसा कि मानव समुदाय के अलावा अन्य जीव–जंतुओं ने अपनी–अपनी सुरक्षा प्रणाली विकसित की हुई होती है, जिसमें खाद्य सुरक्षा तथा मौसमी चुनौतियों से बचने के उपाय शामिल होते हैं, परन्तु कई वर्षों से सूखा, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि, आंधी ने लोगों के जीवन शैली को कठिन बना दिया है। कई पर्व–त्यौहार भी प्रभावित होते रहे हैं। उदाहरण; कई सोहराई एवं दसईं में घरों के दीवार सूखे ही नहीं, जिससे इनकी लिपाई-पुताई और साज सज्जा नहीं हो पाई और बासी घर में ही त्यौहार मानना पड़ा, जैसा कि यहाँ का ग्रामीण जन-जनमानस ऋतुओं के अनुसार अपने आवास–निवास एवं भण्डारण की व्यवस्था करता है, जो आने वाले मौसम के आधार पर निर्भर करता है, घरों की रंगाई–पुताई उनके जीवन में उर्जा का संचार करती है ताकि वे दूसरे मौसम के लिए खुद को तैयार कर सकें। झारखंड ही नहीं सम्पूर्ण देश का कृषि चक्र भी अधिकतर पर्व-त्यौहार मौसम के अनुसार होते हैं। प्रत्येक फसल के

बाद उनके पर्व-त्यौहार उनके जीवन में आनंद, ऊर्जा, सामाजिक मेल-मिलाप और जिम्मेदारियों (रेस्ट मैकेनिज्म के रूप में) के निर्वहन के लिए होता है जब वे फुर्सत के क्षणों में इसका निर्वहन करते हैं फिर दूसरे मौसम के अनुसार अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो जाते हैं। यदि मौसम एवं जलवायु ही स्थिर न हो तो जीवन की नियोजन प्रणाली खतरे में पड़ जाएगी ।

दूसरी तरफ यदि यौन व्यवहार व प्रजनन स्वास्थ्य को देखा जाय तो लोग मानते हैं कि जलवायु परिवर्तन यौन एवं प्रजनन स्वास्थ्य एवं सोच को भी प्रभावित करता है, इस विषय में गहन अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है, मगर तथ्यों से मिलने वाले संकेत दर्शाते हैं कि चरम गर्मी और प्राकृतिक आपदाओं का नकारात्मक प्रभाव लोगों पर पड़ता है। कई इलाकों में जीवाणुओं एवं यौन संचारित बीमारियाँ बढ़ जाती हैं। कोविड के बाद तो ये खतरे और भी ज्यादा बढ़ गये हैं और आपदा में जब संसाधन सीमित होने लगते हैं और चुनौतियां बढ़ने लगती हैं तब महिलाओं को अनचाहे समझौते का शिकार बनना पड़ता है जो उसके जीवन चक्र को और ज्यादा असुरक्षित बना देता है। लोग कहते हैं कि आजकल बच्चे शीघ्र सम्बन्ध बना लेते हैं अर्थात लिव–इन–रिलेशनशिप में चले जाते हैं जिसे हम अर्ली–यूनियन (early union) भी कहते हैं। आम लोग इसके लिए स्मार्ट फोन को सबसे ज्यादा दोष देते हैं, परन्तु हमें लगता है कि यह बदलते जीवनशैली, अभिभावकीय कौशल (parenting skill) में छीजन के साथ–साथ बहुत हद तक जलवायु परिवर्तन भी एक कारण है। अब सवाल यह है कि जलवायु परिवर्तन के कारकों के विषय में सोचा जाय या इसके प्रभावों से जूझने के उपायों की तैयारी की जाए। आधुनिकता के बिना हम जी नहीं सकते और आधुनिकता हमें सकारात्मक जलवायु दे नहीं सकती, 'आधुनिकता बनाम प्रकृति' का संघर्ष मानव जाति के लिए खतरा बनती जा रही है। यह खतरा जितना ज्यादा बढ़ेगा गरीब और शोषितों की संख्या उतनी ही बढ़ती चली जाएगी और इनमें महिलाओं की स्थिति सबसे ज्यादा चुनौतीपूर्ण होगी। उनके लिए एक ओर जीवन जीने (survival) के खतरे बढ़ते जा रहे हैं तो दूसरी तरफ समानता एवं अधिकार का संघर्ष भी बढ़ता जा रहा है।

जिस वक्त मैं यह आलेख लिख रही हूँ वह फ़रवरी 2024 का महीना है, परन्तु पिछले डेढ़ माह से हर चौथे-पांचवे दिन बारिश-आंधी और वज्रपात की स्थिति बनी हुई है। एक तो ठंढ का मौसम ऊपर से मौसम का यह हाल, जो हमने अपने बचपन में बहुत कम देखा था। इस परिवर्तन का एक उदहारण मैं प्रस्तुत करना चाहूंगी, अपनी उम्र की दहलीज पर मुझे अपनी हड्डियों को मजबूत बनाये रखने के लिए मीठी धूप की जरुरत है, परन्तु हफ़्तों–हफ़्तों तक या तो धूप निकलती ही नहीं या निकलती भी है तो असहनीय गुस्साई हुई सी तीखी होती है, उसमें मीठापन नहीं होता, इस माह में सरस्वती पूजा है यानि कि बच्चों के सामूहिक क्रियाकलाप एवं पूजा आयोजित करने की जिम्मेवारी, जो उनमें नेतृत्व क्षमता को बढ़ाती है ऐसे में यदि जोरदार गर्जन के साथ मूसलाधार बारिश हो तो क्या होगा, जाहिर है बच्चों में निराशा उन्माद जागेगा, परिणामतः बच्चों के पास मोबाईल तो है ही, यह उदाहरण इसलिए पेश कर रही हूँ ताकि मैं यह बता सकूँ कि जलवायु परिवर्तन कहाँ–कहाँ और कैसे हमारे जीवन को प्रभावित करता है। एक और उदाहरण है गुमला जिले का एक गाँव है जहाँ प्रत्येक परिवार को बकरी एवं मुर्गी पालन के लिए साधारण प्रकार की शेड प्रदान की गयी है। परन्तु इस शेड में ना तो एक भी मुर्गी है और ना ही बकरी, लोग बताते हैं कि मौसमी बीमारी की वजह से सब जीव मर गये। ऐसे ही हमने देखा कि प्रतिवर्ष हजारों पशु वज्रपात एवं ख़राब मौसम के कारण मर जाते हैं, जिसकी भरपाई करना गलत समझौते को न्योता देता है। झारखण्ड के लिए असमय बारिश और वज्रपात बड़ी विपदा बन गयी है, जो कथित तौर पर बड़े लोगों को नहीं लेकिन सीमांत किसान, दिहाड़ी मजदूर और महिलाओं की कमर जरुर तोड़ देती है। चूँकि ऐसी आबादी के हितों की चिंता करना सरकार के साथ–साथ हम सबका कर्तव्य है, इसलिए इन मुद्दों का हल भी मिलकर ही ढूँढ़ना होगा।

(यह मेरे निजी विचार हैं)

जलवायु-संकट का ग्रामीण महिलाओं पर कुप्रभाव

घनश्याम

यह बात अब सर्वविदित है कि आज की दुनिया की सबसे बड़ी और सर्वव्यापी समस्या जलवायु संकट है। इसके चलते कई देशों के अस्तित्व खतरे में है। खासकर समुद्र की परिधि से घिरे देश। कुछ देश ऐसे भी हैं जो हर वर्ष जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्र में उठने वाले तूफान और जलजला से तबाह होते रहते हैं। कुछ देशों की फसलें बारिश के समय तबाह हो जाती हैं। और इन समस्याओं का सीधा प्रभाव महिलाओं और बच्चों पर पड़ता है। आज लगभग कुछ इसी तरह की मिलती-जुलती स्थिति अपने देश भारत की है। यह भविष्यवाणी की जा रही है कि पश्चिम बंगाल का सुंदर वन अपने अस्तित्व बचाने के मुहाने पर खड़ा है। इसके समुद्र में समा जाने का खतरा मंडरा रहा है।

आइए, अब जरा झारखंड के संदर्भ में बात करें। पिछले दो वर्षों से झारखंड लगातार भयंकर सूखे की स्थिति का सामना कर रहा है। 2022 जहां झारखंड के 22 जिले सूखा ग्रस्त हुए थे वहीं 2023 में झारखंड के 17 जिलों के 158 प्रखंड भयंकर सूखे की चपेट में आ गए। 11 जनवरी 2024 को झारखंड सरकार ने सूखाग्रस्त जिलों और प्रखंडों की सूची जारी की है।

अमूमन अंधविश्वास में डूबे लोग यह मानते हैं कि यह सूखा भगवान की देन है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि यह सूखा प्राकृतिक आपदा है। उक्त दोनों मान्यताएं आज के संदर्भ में सही नहीं हैं। अगर लोग गहराई और गंभीरता से सोचें तो यह बात समझ में आ जायेगी कि इसका कारण आज का बदलता मौसम है यानी जल और वायु के ऊपर का आसन्न संकट है जो मानव निर्मित है या यों कहें कि व्यवस्थाजन्य संकट है। राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के गर्भ से यह समस्या उत्पन्न हुई है।

खैर यहां इस बात पर ज्यादा विस्तार से चर्चा की छूट नहीं है। इसलिए सीधे सूखा का असर महिलाओं पर किस तरह पड़ रहा है और इसके कारण खेती-किसानी में आ रहे बदलाव से परिवार किस तरह बिखर रहा है इन कुछ मुद्दों को चिह्नित करने की कोशिश कर रहा हूं।

पहला मुद्दा है, सुखाड़ के कारण रोजी-रोजगार पर आ रहे संकट से निबटने के लिए 'विवशता पूर्ण पलायन' (फोर्स्ड माइग्रेसन) की समस्या पैदा का होना। जिनमें महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है। महिलाओं के पलायन होते ही पूरा परिवार बिखर जाता है जिसके चलते अपने तथा बच्चों को संभालने की जिम्मेदारी महिलाओं पर आ जाती है। परिचित परिवेश से उल्लासित होने के कारण जीवन जीने का ताना-बाना बिखर जाता है और महिलाएं दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हो जाती हैं। भरपेट भोजन के अभाव में महिलाएं रक्तक्षीणता का शिकार हो जातीं हैं जिसका सीधा असर गर्भवती महिलाओं के गर्भ में पलने वाले शिशु पर पड़ता है। गर्भ में पल रहे शिशु मंदबुद्धि और विकलांगता के शिकार हो इस धरा पर आते हैं और मां के लिए बोझ बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में महिलाओं के सामने एक तरफ पेट पालने की चुनौती आ खड़ा होती है तो दूसरी तरफ बच्चों के अस्तित्व को बचाए रखने की। यह समस्या औरतों को तन और मन से तोड़ देती है।

पलायन की समस्याओं को झेल रही युवतियों पर तो और बुरा असर पड़ता है। एक तरफ युवा मन को यह उन्मुक्त आकाश में उड़ने का सपना दिखाता है तो दूसरी तरफ पलायन के कारण पेट भरने और देह को ढकने की समस्या उसे जमीन पर ला पटकती है। द्वंद और दुविधा की स्थिति में ऐसी युवतियां ट्रैफिकिंग की शिकार हो जातीं हैं और इसी तरह की अभिशप्त जीवन जीने को विवश हो जाती हैं।

इसीलिए जलवायु संकट, सूखा, पलायन और ट्रैफिकिंग को जोड़कर देखने की जरूरत है। ■

जलवायु परिवर्तन पर न्यायसंगत लैंगिक दृष्टिकोण

श्रावणी

आज जब पूरे विश्व में लैंगिक न्याय और जलवायु परिवर्तन की चर्चा जोरों पर है तब प्रसिद्ध इको फेमिनिस्ट सूसान ग्रिफिंग की पुस्तकों का जिक्र करना यहां जरूरी हो जाता है। उनकी पुस्तकें पैसेज और उसकी दृष्टि में महिला खुद को पितृसत्तात्मक बंधनों से मुक्त करती है और नारीवादी चेतना की रोशनी में कदम रखती है। वह एक नये युग एवं नये दुनिया की कल्पना करती है जिसमें महिलायें प्रकृति के साथ अपने अंतर्संबंध को स्थापित करते हुए कविता ''स्त्रियां और प्रकृति'' (Women and Nature) में कहती हैं -

''हम प्रकृति हैं
हम स्त्रियां हैं
हम फूल और पतंगे हैं
हम प्रकृति और स्त्रियां है
वह बोलता
हमारी भाषा वह सुनता नहीं है
लेकिन हम सुनती हैं।''

उनकी अन्य कविताओं में भी धरती यानी पृथ्वी के साथ स्त्रियां अपना संबंध जोड़ती हुई दिखती हैं। स्त्रियां कहती हैं -

पृथ्वी मेरी बहन है;
मुझे उसकी दैनिक कृपा पसंद है,
उसकी मौन साहस,
और मैं कितना प्यार करती हूं
हम एक दूसरे की इस ताकत की कैसे
प्रशंसा करते हैं,
वह सब कुछ जो हमने खो दिया है
वह सब जो हमने जीया है
वह सब जो हम जानते हैं:

हम इस खूबसूरती से दंग रह गए,
और मैं नहीं भूलती;
वह मेरे लिए क्या है,
मैं उसके लिए क्या हूं।

निश्चय ही स्त्रियां प्रकृति के करीब हैं, जल, जंगल, पहाड़, नदी जैसे प्राकृतिक धरोहर उनके जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं इसलिए जब प्रकृति के साथ छेड़छाड़ होता है पर्यावरण को क्षति पहुँचती है तो उसकी पीड़ा स्त्रियों को ज्यादा होती है या यों कहें कि इसका दुष्परिणाम उनको ज्यादा झेलना पड़ता है। आज जब पूरी दुनिया में जलवायु परिवर्तन एक विचारणीय मुद्दा बनकर उभरा है। विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देश इससे ज्यादा प्रभावित हैं। अत्यधिक गर्मी, ठंड, अनावृष्टि अतिवृष्टि मौसम का बदलना, प्राकृतिक आपदा लाखों लोगों की पीड़ा बन गये हैं। निश्चय ही जलवायु संकट इस सदी की सबसे बड़ी चिन्ता वाली बात है। प्रत्येक व्यक्ति इनसे प्रभावित होगा कोई कम तो कोई ज्यादा।

जलवायु परिवर्तन से पूरे समाज में असर पड़ता है

परन्तु अध्ययनों से जो निष्कर्ष निकलकर सामने आया है उससे साफ स्पष्ट होता है कि पर्यावरण में आ रहे बदलावों और उससे पैदा होने वाली संकट की मार महिलाओं पर ज्यादा पड़ रहा है या पड़ने वाला है। इस सबके बीच संयुक्त राष्ट्र ने जलवायु परिवर्तन को दुनिया भर की महिलाओं के लिए नई चुनौतियां माना है। उनका कहना है कि पर्यावरण परिवर्तन में सबसे अधिक महिलायें प्रभावित होगी। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने चेतावनी देते हुए कहा है कि जलवायु संकट का सबसे ज्यादा असर विकासशील देशों की महिलाओं पर पड़ेगा। तापमान परिवर्तन से बाढ़ एवं सूखा की समस्या तो होगी ही साथ ही महिलाओं को खाना पकाने के लिए पानी और ईंधन का संग्रह करना कठिन हो जायेगा।

इसके अलावा जलवायु परिवर्तन से जुडी कठिनाईयां झारखंड जैसे प्रदेश के लिए बड़ी चिंता का विषय है। यहां की 80 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका कृषि एवं वनोपज पर आधारित है। कृषि भी मानसून पर आधारित है। समय पर वर्षा का न होना कृषि को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 80 प्रतिशत महिलायें कृषि कार्य से जुड़ी है। लैंगिक असमानता के कारण कृषि कार्य में महिलाओं के योगदान की अनदेखी की जाती रही है ऐसे में जलवायु परिवर्तन उनके आजीविका को और ज्यादा असुरक्षित बना दे रहा है। भूमि पर उनका अधिकार न होने से वे ज्यादा मजदूरी में ही लिप्त होती है। कम पैदावार की स्थिति में उनकी मजदूरी भी प्रभावित होगी। कृषि उत्पादन प्रभावित होने से खाद्यान्न की कमी हो जायेगी। अभी भी घरों में लड़कों एवं लड़कियों की खान-पान में भेदभाव किया जाता है। खाद्यान्न में कमी के कारण लड़कियों को संतुलित एवं पर्याप्त पोषण वाला भोजन नहीं मिलेगा। यह कुपोषण उनके शारीरिक और मानसिक विकास को प्रभावित करेगा। कुपोषण की वजह से वे अन्य कई बीमारियों से भी ग्रसित हो सकती है। परिवार में आय कम होने पर इसका असर लड़कियों की शिक्षा पर भी पड़ेगा। प्रतिकूल परिस्थितियों में लड़कों के मुकाबले लड़कियों के आसानी से स्कूल न जाने या पढ़ाई छोड़ने के लिए बाध्य किया जायेगा। शिक्षा में उनकी सीमित पहुंच उनके आर्थिक सामाजिक और बौद्धिक विकास को रोकेगी जो उनके भविष्य को अंधकारमय बनायेगी।

गरीबी और भविष्य के प्रति असुरक्षित समुदाय अक्सर अपनी बेटियों की जल्दी शादी का रास्ता अपनाते हैं। समय से पहले शादी लड़कियों के मानसिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालता है।

पर इसे अजीब विडंबना कहे या हमारे समाज की पितृसत्तात्मक सोच समस्या से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाला तबका सब बहस विमर्शों से कोसों दूर है और वे आसन्न संकट और चुनौतियों से बेखबर किसी दूर दराज के गांवों में रोजी रोटी की तलाश में जुटी हुई हैं।

जलवायु संकट का प्रभाव महिलाओं पर ज्यादा पड़ने के कारकों में मुख्य निम्न हैं -

सामाजिक नियम - साामजिक मानदंड और परिवार और समुदाय में तय लैंगिक भूमिकायें महिलाओं पर परिवार की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने का बोझ डालती है। लैंगिक असमानता के परिणामस्वरूप भोजन, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी आवश्यकतायें तक उनकी पहुंच भी सीमित हो जाती है।

संसाधनों तक सीमित पहुंच - महिलाओं के पास भूमि, ऋण और प्रोद्यौगिकी जैसे संसाधनों तक पहुंच सीमित होती है या न के बराबर होती है। जिसके चलते भी वे इसका ज्यादा दुष्प्रभाव झेलती है।

श्रम का असमान वितरण - महिलाओं के जिम्मे अक्सर वैसे घरेलू कार्य जिसमें समय भी ज्यादा लगता है, आय भी नहीं होती है वैसे कार्य आते हैं जैसे – खाना पकाने, सफाई करने, पानी और ईंधन इकट्ठा करने तथा बच्चे एवं बुर्जुगों की देखभाल आदि। जलवायु संकट महिलाओं के कार्य भार को बढ़ाता है। शिक्षा या आय पैदा करने वाली गतिविधियों तक उनकी पहुंच को सीमित करता है। उनका सारा समय घरेलू कार्यों को करने में ही लग जाता है।

निर्णय लेने में सीमित भागीदारी - राजनीतिक और प्रशासनिक स्तर पर नीति निर्माता एवं निर्णय का अधिकार न मिलना भी उनके अधिकार को बाधित करता है। उनके जरूरतों के लिए पर्याप्त आवाज उठाई नहीं जाती है।

जैविक भूमिका - गर्भवती महिला और गर्भस्थ शिशु जलवायु संकट के दुष्परिणामों से अत्यधिक असुरक्षित होते हैं। पर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएं न होना और सेवाओं तक उनकी सीमित पहुंच खतरे को और गंभीर बनाता है।

इसके अलावा प्राकृतिक आपदायें या इनसे संबंधित घटनायें जब घटती हैं तो महिलाओं को लिंग आधारित हिंसा का सामना भी करना पड़ता है। महिलाओं को केवल पीड़िता के रूप में न देखकर उन्हें सक्रिय और प्रभावी व्यक्ति के रूप में चिन्हित करना आवश्यक है। महिलाओं में ऐतिहासिक रूप से खाद्य संरक्षण, राशनिंग जल संचयन, भंडारण सहित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन से संबंधित ज्ञान और कौशल है। पारंपरिक विशेषज्ञता और विरासत में मिले ज्ञान के सहारे वे जलवायु अनुकूलन कार्यक्रमों को डिजाइन करने की क्षमता रखती हैं जो आपदाओं से निपटने में काफी मदद कर सकते हैं।

इसके अलावे दुनिया भर में महिलायें पर्यावरण को बचाने के आंदोलन का नेतृत्व कर रही हैं। उनके सक्रिय भागीदारी के फलस्वरूप कई आंदोलन सफल भी हुए हैं।

वहीं यह बात अखरती है कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए नीतियों और रणनीतियों को विकसित करते समय लैंगिकता का मुद्दा नदारद है। महिलाओं की भागीदारी संबंधी आंकड़ों पर अगर हम नजर डालें तो पाते हैं कि किसी भी चर्चा के उपरान्त फैसलों में महिलाओं की भूमिका नगण्य है। सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संगठन द्वारा किये जाने वाले प्रमुख पर्यावरणीय समझौतों में महिलाओं के सरोकारों को अनदेखा कर दिया जाता रहा है। माना जाता रहा है कि जलवायु संबंधी तमाम प्रयासों का लैंगिकता से कोई लेना देना नहीं है। भारत के जलवायु संबंधी प्रमुख दस्तावेज नेशनल एक्शन प्लान ऑन क्लाइमेट चेंज (NAPCC) को अगर लैंगिकता के संदर्भ में देखें तो जमीनी स्तर पर महिला मुद्दों पर कार्य करने वाली और सरकारी संगठनों की भूमिका को अनदेखा किया गया है। वह भी उस स्थिति में जब जलवायु परिवर्तन की सूरत में महिलायें ही सर्वाधिक प्रभावित होती है।

इसके लिए जरूरी है कि जलवायु के प्रति संवेदनशील बुनियादी ढांचा तैयार किया जाय। इसमें स्कूल और स्वास्थ्य केंद्रों को भी शामिल करने की आवश्यकता है। यह ढांचा मौसमी घटनाओं द्वारा उत्पन्न परेशानियों को कम करने में मदद कर सकता है।

सरकारी नीतियों को खासकर संवेदनशील समुदाय एवं महिलाओं, बच्चियों की जरूरतों को प्राथमिकता देनी चाहिए जिनका जीवन जलवायु संकट से प्रभावित हो रहा है। उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली नीतियां लागू करना जरूरी है।

नीति निर्माण एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भागीदारी, संसाधनों तक उनकी पहुंच, स्वामित्व और नियंत्रण के मामलों में उन्हें सशक्त बनाये जाने की जरूरत है।

उनके पारंपरिक एवं पर्यावरणीय ज्ञान को भी समुचित सम्मान दिया जाना जरूरी है।

परिवार, समाज, समुदाय एवं सरकार हर स्तर पर लैंगिक संवदेनशीलता दिखनी चाहिए। हर नीतिगत फैसलों में उन्हें अवसर और स्थान दिया जाय। साक्षरता, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के जरिए महिलाओं को जलवायु परिवर्तन एवं इससे संबंधित मामलों के मद्देनजर सशक्त बनाया जा सकता है। ■

तापमान बढ़ने का खतरा और महिलाएं

शशि बारला

पृथ्वी एक ऐसा ग्रह है जहां जीवन है। लेकिन यहां विकास के नाम पर मनुष्य जो कुछ कर रहा है, उससे मानवजाति विनाश की ओर बढ़ रही है। हैरानी तो इस बात की है कि बार-बार दी जा रही चेतावनियों को वह अनसुना कर रहा है। कुछ सालों पहले पर्यावरण जैसे विषय इतने लोकप्रिय और चर्चित नहीं थे। आम आदमी तब यह नहीं सोचा था कि हम पृथ्वी को संकट में डाल रहे हैं। प्रत्येक वर्ष पर्यावरण दिवस (5 जून) मनाकर लोग अपने को इससे जुड़ा हुआ मानते हैं। पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने और पर्यावरण संरक्षण के प्रति बच्चे और बड़े सभी आम जनता को जागरूक करने और प्रकृति को पुनः समृद्ध बनाने का संकल्प लेते हैं। पर हम वास्तव में जानते हैं कि लोग पर्यावरण को बचाने के लिए कितना अपना योगदान दे रहे हैं।

विश्व के अनेक देशों के वैज्ञानिकों ने तो 70 के दशक में ही महसूस कर लिया था कि जैविक विकृतियां, नैसर्गिक नियमों और अनियोजित औद्योगीकरण के कारण अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। पौधों और जंतुओं की अनेक प्रजातियां विलुप्त हो रही हैं। भूमिगत जलस्तर घटता जा रहा है, ग्लेशियर सिकुड़ रहे हैं और शुद्ध पेयजल दुर्लभ होता जा रहा है। वैज्ञानिकों द्वारा बार-बार दी जा रही चेतावनियों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि अंतिम दशक आते-आते समस्या इतनी विकट हो गई है कि इससे निपटना अब आसान नहीं लगता है। सन् 2000 के बाद से गर्मी इतनी भयंकर रूप से पड़ रही है कि लोग बिजली-पानी के लिए हाहाकार कर रहे हैं। चेतावनियों को भी नजरअंदाज कर दिया गया। अगर अब भी पर्यावरण की दशा नहीं सुधरी तो आनेवाले समय में हालात और बदतर हो जाएगी। वैज्ञानिकों का भी मानना है कि 2050 तक पृथ्वी की सतह का औसत तापमान और ज्यादा बढ़ जाएगा। प्रदूषण की दिन पर दिन बढ़ती मात्रा के चलते 21वीं सदी के मध्य तक मानव जाति काफी हद तक अपनी दीर्घायु क्षमता खो बैठेगी।

बरसों से मनुष्य पृथ्वी के वनास्पतिक आवरण को हानि पहुंचाने का जो अपराध कर रहा है, यह उसका ही नतीजा है कि दिन प्रतिदिन पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है। वनों की अंधाधुंध कटाई कर मनुष्य स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का अप्राकृतिक ढंग एवं अतिदोहन से समाज में कुछ समस्याओं का हल भले निकल आए, लेकिन निकट भविष्य के लिए यह एक चुनौती है। लगातार फसलों की रोपाई, नदियों की गति में परिवर्त्तन करना, खनिजों का उत्खनन, कल-कारखानों से विषैली गैसों का रिसाव, पौधा घर, (ग्रीन हाउस) का प्रभाव आदि इसके दुष्परिणाम का कारण हैं। ग्रीन हाउस का प्रभाव और ओजोन की छतरी में छेद होना इसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव है।

वनों की कटाई भी धरती की तापमान बदलने का मुख्य कारण है। वनों और अन्य वनस्पतियों के विनाश तथा जीवाश्म ईंधन आधारित औद्योगिकीकरण के दुष्परिणाम अब दिखाई देने लगे हैं। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, घटता पानी, बढ़ता तापमान, सिकुड़ते ग्लेशियर, मरूस्थल होती धरती, लुप्त होते वन्य जीव व वनस्पतियां, बढ़ती जनसंख्या और औद्योगीकरण की अंधी दौड़ से हमारी धरती के पर्यावरण पर गंभीर खतरा बढ़ गया है।

पर्यावरण के नाम पर वृक्ष लगाने की परंपरा हजारों साल पुरानी है। लेकिन आर्थिक विकास के नाम पर विश्व के सभी देशों ने इस अवधारणा को नष्ट कर दिया है। वन संरक्षण अधिनियम 1980 के अनुसार देश की संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल का एक तिहाई अर्थात् 33 प्रतिशत

भू-भाग वनाच्छादित होना चाहिए। लेकिन इस समय देश में संरक्षित वन क्षेत्र 20 प्रतिशत से भी कम है। धरती पर पर्याप्त मात्रा में वृक्षों के न होने से वातावरण में ऐसी गैसों की संख्या बढ़ रही है, जिससे पृथ्वी गर्म होती है। विभिन्न स्त्रोतों से निकलने वाली इन गैसों की मात्रा औसतन 700 टन होती है। ये अवशोषित हुए बिना सीधे वायुमंडल में पहुंच रही है। जिसकी वजह से धरती का तापमान बढ़ रहा है। तापमान बढ़ने का सीधा असर यह होगा कि बर्फीले पहाड़ों से बड़ी मात्रा में बर्फ पिघलेगी।

पिछले 100 सालों में दुनिया के सभी ग्लेशियरों का आकार घट रहा है, जिससे समुद्र का जलस्तर बढ़ता जाएगा। ऐसे में समुद्रतट से 60 किलोमीटर की सीमा में रहनेवाली विश्व की दो तिहाई आबादी का क्या होगा? जिसमें आधी जनसंख्या महिलाओं की है। समुद्रतट पर रहने के कारण अधिकांश लोग इसी से अपना व्यवसाय चलाते हैं। उन्हें बसने के लिए कहीं ऐसी जगहों पर जाना पड़ेगा, जहां शायद उनके लायक कोई काम धंधा नहीं मिले।

महिलाओं को विशेष रूप से जलवायु परिवर्त्तन से खतरा है। इनमें से अधिकांश निर्धन समुदाय से हैं। जो मुख्यतः प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। आपदाओं का शिकार बनने का जोखिम उनके लिए अधिक है। महिलाओं तथा लड़कियों के विरूद्ध होनेवाली हिंसा सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कारणों से भी होती है। जैसे कि विस्थापन, सशस्त्र संघर्ष और संसाधनों की किल्लत। जब धीमे-धीमे या तेजी से कोई आपदा आकर आजीविकाओं के लिए खतरा बनती है तो लोग उस हालात का सामना करने के लिए नकारात्मक उपायों का सहारा लेते हैं। जैसे तस्करी, यौन शोषण और बाल-विवाह या स्कूली पढ़ाई छोड़ देना। इनमें से सभी में महिलाओं और लड़कियों को जीवित रहने के लिए जोखिम भरे विकल्पों को चुनना पड़ता है। महिलाएं ज्यादातर संरक्षण उपायों की पहुंच के दायरे से बाहर होती हैं।

यू.एन.डी.पी. के मुताबिक पुरूषों की तुलना में महिलाओं और बच्चों के किसी आपदा में मौत की संभावना 14 गुना अधिक होती है। जल, ईंधन के लिए लकड़ी इत्यादि का प्रबंध करने की जिम्मेदारी आमतौर पर महिलाओं की होती है। घर, परिवार चलाने के लिए, संसाधनों का इंतजाम करने में उन्हें अनजान इलाकों में जाना पड़ता है। जहां उनके लिए मुश्किलें बढ़ जाती हैं। एक बसी-बसाई आबादी को अपने निवास स्थान को छोड़कर दूसरी जगह पर बसने के लिए मजबूर होना पड़ता है। आबादियों का विस्थापन होने से महिलाओं और लड़कियों के लिए शरणार्थी शिविरों में हिंसा का शिकार होने का जोखिम बढ़ जाता है।

मौसम में निरंतर बदलाव की वजह से आजीविका बर्बाद हो जाती है और निर्धनता बढ़ती जाती है। ऐसी हालत में परिवार में भोजन की किल्लत हो जाती है। फसलें बर्बाद होती हैं। जिससे खाद्य असुरक्षा की चुनौतियों के बाद कृषि क्षेत्र में काम करनेवाली महिलाओं के लिए तुरंत रोजगार नहीं मिल पाता है। मानसून ऊपरी और भूगर्भीय जल को बढ़ाता है। मानसून का विफल होना और सुखाड़ का अर्थ ही है खाद्यान्न संकट। इस संकट से उबरना भी महिलाओं को ही होता है, क्योंकि घर-परिवार की जिम्मेदारी उसी की होती है। रासायनिक खेती में पर्यावरणीय खेती के मुकाबले दस गुना अधिक पानी की आवश्यकता होती है। विश्व बैंक और अमेरिकी दबाव में भारत को रासायनिक खेती के मॉडल को अपनाना पड़ा। पानी की बर्बादी करती रासायनिक खेती ने न केवल भूगर्भीय जल को ही खत्म किया बल्कि यह भूमि की उर्वरा शक्ति को भी खत्म कर दे रही है। यदि खेती ही नहीं होगी तो महिलाएं अपने घर-परिवार को क्या खिला पाएंगी?

मनुष्य का प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग या पूंजीकरण उसी विकास प्रक्रिया की निरंतरता है जिसने बराबर प्रकृति को संसाधन समझा और उसे इसी रूप में वैश्विक मान्यता दी। प्रकृति को संसाधन बनाकर जब बेरहमी से दोहन का सिलसिला सदियों तक चला तो उसका विध्वंसक नतीजा 20वी सदी में सबसे वीभत्स रूप में देखने को मिला। 1990 की शुरूआत से ही दुनिया भर में पर्यावरण बचाव तथा पर्यावरण को जीवित रखने वाले विकास (Sustainable development) के तरीके ईजाद करने के लिए शोध और अध्ययन होने लगे। विनाश पर टिके विकास के प्रारूप की सीमाओं और अमानवीय संभावनाओं की पोल विशेष रूप से जेंडर आधारित शोध एवं अध्ययनों ने खोलकर रख दी। ■

जलवायु संकट का कृषि पर प्रभाव

स्वाति शबनम

वैश्विक जलवायु परिवर्तन अब कोई नई परिघटना नहीं है। वैश्विक तापमान में वृद्धि, ग्लेशियरों का पिघलना /खिसकना, समुद्र का बढ़ता जलस्तर, वर्षा में गड़बड़ी, कभी कम तो कभी बहुत अधिक वर्षा, वर्षा की तीव्रता में वृद्धि, फसल उगाने के मौसम में फेरबदल, सूखा एवं बाढ़ जैसी चरम घटनाओं में वृद्धि, आदि जलवायु परिवर्तन के प्रत्यक्ष प्रमाण और निष्कर्ष हैं। जलवायु परिवर्तन से जहाँ कई खतरे उत्पन्न हुए है, इसका एक महत्वपूर्ण परिणाम जल संसाधनों एवं फसल उत्पादकता की मात्रा एवं गुणवत्ता में कमी आना है।

जलवायु एवं मौसम फसल उत्पादकता के सबसे महत्वपूर्ण निर्धारक हैं, विशेषकर भारत जैसे देश में जहां खेती योग्य क्षेत्र का लगभग दो तिहाई भाग वर्षा आधारित है। भारत में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान अब मात्र 14 प्रतिशत रह गया है, लेकिन आज भी लगभग 65 प्रतिशत आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। पिछले कुछ वर्षों में शहरीकरण, बढ़ती जनसंख्या, औद्योगीकरण की तेज रफ्तार एवं अन्य कारणों से पानी की मांग बढ़ी है। इसके अलावा फसल एवं भूमि उपयोग पैटर्न में बदलाव, भूजल के अत्यधिक दोहन एवं सिंचाई और जल निकासी में बदलाव ने भारत के कई जलवायु क्षेत्रों और नदी घाटियों में जल चक्र को प्रभावित किया है। कृषि उत्पादन में जल की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण कारक है। भारत के अधिकांश क्षेत्रों में कृषि के लिए पानी की उपलब्धता एवं गुणवत्ता गंभीर बाधा उत्पन्न करते हैं। भारतीय कृषि देश में उपलब्ध जल का लगभग 80 प्रतिशत तक उपभोग करती है। पिछले कुछ वर्षों में अधिक से अधिक क्षेत्र को सिंचाई के अंतर्गत लाया गया है तथा इससे भी कृषि के लिए आवश्यक जल की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। इसने

खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किंतु जलवायु परिवर्तन की घटनाओं के बीच बेहतर जल प्रबंधन दृष्टिकोण एवं जलवायु अनुकूल कृषि विकसित करना समय की मांग है।

भारत को जलवायु परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील देशों में से एक माना जाता है। हाल के अध्ययनों में तापमान में अत्यधिक वृद्धि, सूखा, अत्यधिक वर्षा एवं तीव्र चक्रवातीय गतिविधियां देखी गई हैं एवं 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानसून के कमजोर होते जाने की भी सूचना है जो भारतीय कृषि के लिए जल का प्राथमिक श्रोत है। इस तरह के बदलावों ने कृषि क्षेत्र को कई तरह से असुरक्षित बनाया है। भारत जैसे विकासशील देश में जलवायु परिवर्तन एक अतिरिक्त बोझ है क्योंकि पारिस्थितिक एवं सामाजिक-आर्थिक प्रणालियां पहले से ही कई दबावों का सामना कर रही हैं। भारत को अपनी लगातार बढ़ती जनसंख्या की भोजन की मांग की पूर्ति करने के लिए 50-70 प्रतिशत अधिक खाद्यान्न उत्पन्न करने की आवश्यकता है। जबकि सभी जलवायु मॉडल इस बात की भविष्यवाणी करते हैं कि कृषि उत्पादन क्षेत्रों में चरम मौसम

की घटनाएं इस बात को भी प्रभावित करेंगी कि बीमारियों एवं कीटों का आक्रमण कहाँ और कब होगा जिससे गंभीर जोखिम खड़ा होगा तथा फसल विफलता की संभावनाएं प्रबल होंगी।

जलवायु परिवर्तन तथा उससे जुड़ी कठिनाइयां भारत के लिए बड़ी चिंता का विषय है क्योंकि 80-85 प्रतिशत किसान छोटे एवं सीमांत किसानों की श्रेणी में आते हैं एवं उनका वित्तीय लचीलापन कम है। इसके साथ ही महिलाओं की भी कृषि क्षेत्र के कार्यबल में लगभग 65 प्रतिशत हिस्सेदारी है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो यह आँकड़ा और भी बड़ा है जहाँ 79 प्रतिशत के लगभग ग्रामीण महिलाएं कृषि कार्यों से जुड़ी हैं। जहां पहले से ही लैंगिक असमानता के कारण महिलाओं के कृषि कार्य में योगदान को पर्याप्त मान्यता नहीं मिलती है, असमान मजदूरी के साथ भूमि अधिकार एवं निर्णय लेने के मामले में उनकी अनदेखी होती रही है, जलवायु परिवर्तन ने उनकी आजीविका को और ज्यादा असुरक्षित बनाया है। चूंकि भूमि अधिकार न होने के कारण महिलाएं अधिकतर मजदूरी में ही लिप्त होती हैं, कम पैदावार की स्थिति में उनकी मजदूरी भी प्रभावित होगी।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम किए जाने के उपायों के बावजूद आने वाले दशकों में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव जारी रहेंगे जिससे अनुकूलन की तत्काल आवश्यकता है। मौसम के अनुसार फसलों का चुनाव, सूखा रोधी फसल किस्मों का चुनाव, (जैसे - गोड़ा धान), बेहतर जल प्रबंधन कीट एवं रोगरोधी किस्मों का चुनाव तथा जलवायु परिवर्तन में कृषि के योगदान को कम करना जलवायु अनुकूलन के कारगर उपाय हैं जो भारतीय कृषि को आने वाली चुनौतियों के प्रति तैयार करेंगी। ■

एक युवा जंगल

एक युवा जंगल मुझे,
अपनी हरी पत्तियों से बुलाता है।
मेरी शिराओं में हरा रक्त बहने लगा है
आंखों में हरी परछाइयां फिसलती हैं
कंधों पर एक हरा आकाश ठहरा है
होंठ मेरे एक हरे गान में काँपते हैं :
मैं नहीं हूं और कुछ
बस एक हरा पेड़ हूं
– हरी पत्तियों की एक दीप्त रचना!
ओ युवा जंगल
बुलाते हो
आता हूं
एक हरे बसंत में डूबा हुआ
आऽ ताऽ हूँ...।

– अशोक वाजपेयी

सभ्यता के विकास के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं रख-रखाव में बदलाव आता गया। जलवायु परिवर्तन के कारण सुखाड़ की समस्या, बाढ़ और समुद्री तूफान, मौसम में बदलाव दिखाई पड़ रहे हैं। कोयला खनन के कारण प्रदूषण और अन्य हानिकारक गैसों का उत्सर्जन लगातार देखने को मिल रहा है। अधिकांश खदानों में कोयले का खनन करके खुला छोड़ दिया जाता है। पर्यावरण बचाने के नाम पर पेड़-पौधों को लगाने का काम भी नहीं किया जाता है। इसी तरह रासायनिक उर्वरक से जमीन के जैविक तत्वों का भी नुकसान हो रहा है जिससे मिट्टी के जलधारण की क्षमता खत्म होती जा रही है। एक हद तक खेती की यह स्थिति सुखाड़ की ओर बढ़ रही है। कुछ इन्हीं परिस्थितियों का सामना कर रही है, बोकारो और धनबाद जिलों की पर्यावरण सखियां ये अपने परिवेश एवं कार्यक्षेत्र में लोगों को पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक कर रही हैं तथा प्रदूषण के खतरों से आगाह कर रही हैं। पर्यावरण सखियां अपने-अपने जिलों के पंचायतों में पेड़ पौधों की बीज लगाकर वहां प्रदूषण को कम करने की शुरूआत की हैं। ये बीज अब छोटे-छोटे पौधों के रूप में बढ़ रहे हैं। प्रदूषण कम करने के प्रयोग हम उन्हीं की जुबानी आपके सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। - सं.

बेहतर विकल्प है जैविक खेती

मालती देवी

जलवायु परिवर्तन का मतलब तापमान और मौसम में बदलाव से है। सूर्य से उत्सर्जित जो ऊर्जा पृथ्वी तक पहुंचती है और फिर हवाओं और महासागरों द्वारा विश्व के विभिन्न भागों में आगे बढ़ती है। कोयला, तेल और गैस वैश्विक जलवायु परिवर्तन का बहुत बड़ा कारण है। पृथ्वी पर कार्बन उत्सर्जन का प्रयोग जलवायु परिवर्तन को बढ़ा रहा है और इस तरह वातावरण को विपरीत रूप से प्रभावित कर रहा है। इसके अलावा धरती का उत्खनन, जंगलों की कटाई और फैक्टरियों से धुआं निकलने से होनेवाले विस्फोटों से भी जलवायु में बदलाव हो रहा है। खेतों, चारागाहों इत्यादि के निर्माण के लिए जब जंगलों को काटा जाता है तो वे अपने द्वारा संग्रहित कार्बन छोड़ते हैं। हर साल करीब 12 मिलियन जंगल नष्ट हो जाते हैं। अतः हम अनुमान लगा सकते हैं कि वातावरण में कितना कार्बन डाइऑक्साइड फैल जाता है।

जलवायु परिवर्तन की वजह से आमजन विशेष रूप से महिलाओं को बहुत तकलीफ झेलना पड़ता है। भारत चूंकि कृषि प्रधान देश है। पर जलवायु परिवर्तन की वजह से जल प्रणाली पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। वर्षा अनियमित हो रही है और वर्षा का स्वरूप भी बिगड़ता जा रहा है। कभी अधिक वर्षा, तो कभी कम। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप ग्लेशियर पिघलते जा रहे है। ये सारी परिस्थितियां पर्यावरण में असंतुलन को बढ़ा रही हैं।

मैं मालती देवी पदुगोडा पंचायत धनबाद से हूं। कोयले के खदानों में नौकरी के कारण बहुत से लोग काफी पहले से यहां आकर बस गए हैं। कोल कंपनी खनन करने के बाद अधिकांश खदानों को बंद नहीं करती है, न ही वहां पर पर्यावरण से संबंधित कोई काम किया जाता है। जैसे कि पेड़-पौधे लगाना इत्यादि। यहां के लोग खेती-बारी भी करते हैं, लेकिन कोलियरी इलाका होने के कारण यहां खेती के लिए थोड़ा मुश्किल हो जाता है। एक तो यहां पानी की कमी हो जाती है, दूसरा कोयला खदान की धूल फेफड़ों की कई बीमारियों का कारण बन जाती है। अधिकांश महिलाएं फेफड़ों की बीमारी का शिकार भी हैं। फलतः उनके लिए खेतों में काम करना मुश्किल हो जाता है। पानी की कमी के कारण लोग रासायनिक खादों का इस्तेमाल करते हैं। रासायनिक खादों के इस्तेमाल से पैदावार तो अच्छी हो जाती है, लेकिन जमीन की उर्वरा शक्ति धीरे-धीरे खत्म होती जा रही

है। तरह-तरह की बीमारियां हो रहीं हैं सो अलग। कोयले के कण से यहां की जमीन बंजर होती जा रही है। कोयला खदान की धूल, काम का बोझ, बंजर जमीन और जोखिम कारकों के कारण अधिकांश लोग अपने घर को छोड़कर पलायन कर जाते हैं। पुरूषों के पलायन करने से महिलाओं को अकेले घर-बाहर, बच्चे और खेती को भी संभालना पड़ता है।

ग्रामीण आबादी खासकर महिलाओं पर जलवायु परिवर्तन का गंभीर असर पड़ता है। जलस्त्रोत सूखने और जल स्तर गिरने और जंगलों के खत्म होने से महिलाओं के लिए अपने घरेलू काम-काज के लिए भी कठिनाईंयां होने लगती हैं। अतः हमने अपने-अपने पंचायत में महिलाओं का समूह बनाकर पेड़ लगाने का निर्णय लिया। इसके लिए हमलोगों ने इधर-उधर फेंके गए बीजों को जमा कर बीज बैंक बनाया। फिर बरसात आने से कुछ पहले उन बीजों को अपने पंचायत में जगह-जगह पर लगाया, जिसमें से अब छोटे-छोटे पौधे हो गए हैं जो जल्द ही बड़े पेड़ बन जाएंगे।

धरती पर बढ़ते प्रदूषण की चपेट में हमारी खेती व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी है। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के निरंतर बढ़ते इस्तेमाल के कारण मिट्टी की संरचना प्रभावित हुई है और मृतप्राय होती जा रही है। किसानों को अकारण फसल नष्ट होने जैसी समस्याओं का सामना अक्सर करना पड़ता है। रासायनिक तत्वों के लगातार इस्तेमाल से फसल उत्पादन की गुणवत्ता पर भी गंभीर असर पड़ा है। उर्वरकों और कीटनाशकों का हमारे स्वास्थ्य पर भी बुरा एवं दूरगामी परिणाम दिखने लगा है। शरीर में आनुवांशिक गड़बड़ियां भी उत्पन्न हो रही हैं। रसायनों के बेतहाशा इस्तेमाल के नतीजों के रूप में हवा, पानी, अनाज, फल, सब्जी, मसाले भी मिट्टी के साथ-साथ दूषित हो गए हैं। स्थिति की भयावहता निरंतर दस्तक दे रही है। अब वक्त है बगैर समय नष्ट किए समस्या का ठोस एवं स्थायी समाधान का।

जलवायु परिवर्तन के इस दौर में पूर्वजों की विरासत वाली कृषि पद्धति अधिक कारगर एवं कम खर्चीला है। जैविक पद्धति से उगाए गए फसल स्वस्थ एवं पुष्ट होते हैं। अतः रोगों का प्रकोप भी कम होता है। जैविक पद्धति से खेती करने पर प्रदूषित वातावरण को नियंत्रित करना और पर्यावरणीय वातावरण तैयार करना भी संभव है। जैविक पद्धति का इस्तेमाल देहातों में बड़े पैमाने पर करने के अलावा शहरों में भी इसे बागवानी में रूचि रखनेवाले लोग कर सकते हैं। रसोई से निकलने वाले कचरा से जैविक खाद केचुंओं के जरिए सहज ही कम समय में (50-75 दिनों में) तैयार किया जा सकता है। इस तरह घरों से निकलनेवाले अवशेषों, जूठन, सब्जियों-फलों के छिलकों आदि का संग्रह कर जैविक खाद बना सकते हैं। ■

आशा की कहानी : जलवायु परिवर्तन और महिलाओं का संघर्ष

लक्ष्मी कुमारी

आधुनिक युग में जैसे-जैसे मानवीय गतिविधियां बढ़ रही हैं वैसे-वैसे ग्रीनहाउस गैसों के वातावरण में फैलने में भी वृद्धि हो रही है, जिसके कारण वैश्विक तापमान बढ़ रहा है। हमारे रोज प्रयोग होनेवाली चीजें जैसे – फ्रिज, ए.सी. आदि जिसके बिना अब मनुष्य अपना जीवन साधारण ढंग से नहीं बिताना चाहता। ये सभी वस्तुएं धरती को गर्म करने के लिए काफी हैं। हमारी जीवनशैली में परिवर्तन ने खतरनाक गैसों को फैलाने में काफी योगदान दिया है। शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण लोगों के जीवन जीने के तौर-तरीकों में भी काफी परिवर्तन आया है।

आशा, धनबाद शहर के एक छोटे से गांव छत्रुटांड़ की महिला है, जिसे अपने परिवार के साथ अपनी जड़ों से जुड़ी जिम्मेदारियों को भी संभालना था। उसका जीवन सामान्य रूप से खुशहाल था। लेकिन जलवायु में परिवर्तन उसकी मुश्किलें बढ़ा रही थीं। मौसम में बदलाव की वजह से तापमान में बढ़ोत्तरी हो रही थी। गर्मियों में बढ़ती अधिकतम तापमान ने खेतों का तापमान भी बढ़ा दिया था। जिससे खेतों में काम करना कठिन हो गया था। गांव के अधिकांश लोगों का जीवन-यापन खेती पर ही निर्भर है। पर समय पर बारिश का नहीं होना उनके लिए चिंता का विषय था। आशा और गांव की महिलाओं को अधिकतम तापमान के कारण स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं हो रही थीं। आशा ने महसूस किया कि इसका सबसे बड़ा प्रभाव महिलाओं पर हो रहा है।

जलवायु बदलाव ने मौसम के अस्तित्व पर असर किया और खेतों में परिस्थितियां अनुकूलता के दृष्टिकोण से बदल गईं। आशा, जो गेहूं और दाल उगाती थीं,

अब नये और उत्तम बीजों की खोज में जुट गईं। उसने सीखा कि जलवायु के परिवर्तन का सामना करने के लिए नए तकनीक उपायों से खेती करने की आवश्यकता है। उसने सोचा कि इससे उसकी उत्पादकता में भी सुधार हो सकता है। आशा ने यह भी देखा कि नई तकनीकियों के अधिग्रहण से पुरानी बुआई कला का समापन हो रहा है जिससे गांव की महिलाएं पहचान खो रही थी। जिन महिलाओं को खेतों में आसानी से काम मिल जाता था, आधुनिक तकनीक और मशीनों ने उनका रोजगार छिन लिया था। गर्मियोंं में काम करने की वजह से उन्हें स्वास्थ्य संबंधी बीमारियां हो रही थीं। गर्मी के मौसम में तेज धूप, उच्च तापमान और त्वचा अच्छी तरह से बचाव नहीं किए जाने के कारण महिलाएं उच्च रक्तचाप अस्थमा और त्वचा संबंधित समस्याओं का शिकार हो गईं थीं। इससे उनके स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था।

आशा ने जब यह सब देखा तो उससे रहा नहीं

गया। उसने गांव की महिलाओं के साथ मिलकर एक समूह बनाया और पर्यावरण संरक्षण के लिए पहल की। आशा ने लोगों को जागरूक करने का काम किया। उसने गांव के लोगों को बतलाया कि पेड़ न सिर्फ हमें फल और छाया देते हैं बल्कि वे वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को कम करके हमें आक्सीजन देते हैं। पेड़ कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करनेवाले प्राकृतिक यंत्र का काम करते हैं। विगत दो वर्षों पहले (2020-2021) के कोरोना काल में हमने ऑक्सीजन की जरूरत को महसूस किया। वर्तमान समय में जिस तरह से पेड़ों की कटाई हो रही है और वन-जंगल खत्म हो रहे हैं वह हमारे लिए चिंतनीय विषय है। इन पेड़-पौधों की समाप्ति के साथ ही हम प्राकृतिक यंत्र भी खो देंगें। जिसके लिए हमें कोई मूल्य नहीं चुकाना होता है। अतः समूह ने मिलकर खेतों में पेड़-पौधे लगाए और जल इकट्ठा करने के लिए कुआं बनाया। अधिकांश महिलाओं ने बीजों को जमाकर बरसात से पहले गांव में जगह-जगह पर उसे लगाने का काम किया है। जो स्थान पहले उजाड़ और वीरान हो चुका था, वहां अब काफी हरियाली हो गई है। हर साल 5 जून को पर्यावरण दिवस के अवसर पर गांव की महिलाओं द्वारा छोटे-छोटे पौधों को वितरण करने की कोशिश की गई। इससे आसपास के इलाकों में पर्यावरण को बचाने का एक संदेश लोगों के पास पहुंचा है।

आधुनिक तकनीक और मशीनों की जगह सबने पारंपरिक तरीके से खेती शुरू की। इन नई तरकीबों की वजह से गर्मियों में काम करना आसान हुआ और जलवायु में भी सुधार आया। साथ ही महिलाओं के रोजगार में भी बढ़ोत्तरी हुई। आशा का कहना है कि देश के मौसम में जो बदलाव आ रहा है, उसका कारण है कि हम लगातार प्राकृतिक चीजों का अत्याधिक दोहन कर रहे हैं। प्राकृतिक चीजों के दोहन ने हमारे काम और हमारी परंपरागत संस्कृति को मटियामेट कर दिया है। इसलिए यहां बार-बार प्राकृतिक विपदाएं आती जा रही हैं। पिछले कुछ दशकों में बाढ़, सूखा और बारिश आदि की अनियमितता काफी बढ़ गई है। यह सभी जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप ही हो रहा है। कुछ स्थानों पर बहुत अधिक वर्षा हो रही है तो कुछ स्थानों पर पानी की कमी से सूखे की संभावना बन गई है। निरंतर बढ़ते हुए आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए वृक्ष काटे जा रहे हैं। आवास खेती, लकड़ी और वन संसाधनों की चाहत में अंधाधुंध वनों की कटाई हो रही है। जिससे पृथ्वी का हरित क्षेत्र तेजी से घट रहा है। जलवायु परिवर्तन का यह भी एक बड़ा कारण है। जलवायु परिवर्तन के कारण लंबे समय तक चलने वाली हीट वेव्स ने जंगलों में लगने वाली आग के लिए उपर्युक्त गर्मी और शुष्क परिस्थितियां पैदा की हैं। अतः पेड़-पौधों को लगाना बहुत ही आवश्यक है।

इस कहानी के माध्यम से हम यह कह सकते हैं कि आशा के संघर्ष ने गांव की सभी महिलाओं को एक नई आशा और दिशा दी। गांव की महिलाओं के लिए यह काम बहुत ही चुनौतीपूर्ण था, क्योंकि खदान इलाका होने के कारण वहां पर पेड़-पौधों को जीवित रखना कठिन काम था। पर महिलाओं ने इस चुनौती को दृढ़ता के साथ स्वीकारा। भोजन एवं साफ-सफाई, पशुओं के लिए घास, ईंधन के लिए लकड़ी इत्यादि की व्यवस्था का भार महिलाओं पर ही होता है। विकासशील देशों में महिलाएं पर्यावरण संरक्षण एवं प्रबंधन में हमेशा पहली पंक्ति में खड़ी रहती हैं। ■

जलवायु संकट से जूझते बच्चे

ज्योति कुमारी

जलवायु परिवर्तन की चर्चा आज जोरो पर है। पर जलवायु परिवर्तन के पहले हमें यह जान लेना आवश्यक है कि जलवायु किसे कहते हैं? जलवायु किसी स्थान के वातावरण को व्यक्त करता है। इसे हम मौसम भी कह सकते हैं, पर मौसम और जलवायु में बारीक अंतर है। मौसम छोटे स्थान एवं कम समय के लिए प्रयुक्त होता है जबकि जलवायु बड़े भूखंड एवं लंबे समय अंतराल के लिए व्यवहार में लाया जाता है।

जलवायु परिवर्तन का मतलब तापमान और मौसम के बदलाव से है। अत्यधिक जाड़ा, अत्यधिक गर्मी, बेमौसम बारिश, सूखा इत्यादि जलवायु परिवर्तन के लक्षण है। यह परिवर्तन प्राकृतिक भी हो सकते हैं - जैसे सूर्य की गतिविधि में बदलाव या ज्वालामुखी विस्फोट। मानव भी जलवायु परिवर्तन करने वाला मुख्य कारक है। अंधाधुंध जंगलों की कटाई, खनन, अनियंत्रित औद्योगीकरण, जीवाश्म ईंधन का उपयोग जैसे मानव निर्मित कार्य भी जलवायु संकट को बढ़ाने में महत्ती भूमिका निभा रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण बनने वाली मुख्य ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाइऑक्साइड और मीथेन हैं। यह कार चलाने एवं इमारतों को गर्म करने के लिए कोयले को जलाने से होती है। किसी भवन को ठंडा करने के लिए जब हम ए.सी. का प्रयोग करते हैं तो इससे निकलने वाली गैस भी वातावरण को गर्म करती है। जंगलों को काटने एवं भूमि को साफ करने में भी वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड गैस की मात्रा बढ़ती है जो हमारे लिए हानिकारक है।

यों तो जलवायु संकट का प्रभाव मानव, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे सभी पर पड़ता है। पर गर्भवती मातायें एवं बच्चे इससे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं।

मैं बोकारो जिले के बेरमो ब्लॉक के अंतर्गत कुरपनिया पंचायत में पर्यावरण सखी के रूप में कार्य कर रही हूं। हमारा मुख्य कार्य पर्यावरण संरक्षण संवर्द्धन के प्रति लोगों को जागरूक करना तथा जलवायु संकट या प्रदूषण से होने वाली हानियों को लोगों को बताना और उन्हें सचेत करना है। मेरा कार्यक्षेत्र खनन क्षेत्र में पड़ता है। कोयला खनन एवं उसके जलने से यहां प्रदूषण काफी अधिक है। प्रदूषण के कारण लोगों में तरह-तरह की बीमारियां फैल रही है। कार्य के सिलसिले में मैं ग्रामीण जनता, महिला समूह एवं स्कूली बच्चों से लगातर मिलती रहती हूं। मैंने अनुभव किया कि अब छोटे बच्चों में भी सांस लेने में कठिनाई, कुपोषण एवं अन्य संक्रामक बीमारी देखने को मिल रही है। हमारे यहां अत्यधिक गर्मी भी पड़ती है। नवजात बच्चे एवं छोटे बच्चे पर इसका प्रभाव खराब पड़ता है। बच्चों का शरीर एवं उनका तंत्रिका तंत्र अत्यधिक गर्मी को झेल पाने में असमर्थ होता है। इससे वे जल्दी-जल्दी बीमार पड़ते हैं। कभी कभी तो बीमारी से उनकी मृत्यु भी हो जाती है। इस तरह हम देखते हैं कि बच्चे सर्वाधिक खतरे में हैं।

खनन क्षेत्र होने के लिए भूमि की उपलब्धता में कमी एवं जंगलों की कटाई से आजीविका पर भी असर पड़ता है। पारिवारिक आय कम होने पर बच्चे का पोषण, साफ पीने का पानी, अच्छी स्वास्थ्य सेवा एवं शिक्षा से भी वे वंचित होते हैं।

किशोरियों को तो ज्यादा ही संकट का सामना करना पड़ता है। पैसे की कमी होने पर लोग लड़कियों की शिक्षा पहले बंद करवाते हैं। हमारी समाज व्यवस्था भी ऐसी है कि लोग अभी भी लड़कियों के साथ खान-पान में भी बर्ताव करते हैं जिसके कारण वे एनीमिया की शिकार हो जाती है। खनन कार्य होने एवं वृक्षों की कटाई के कारण भूमिगत जल स्तर भी काफी घट गया है। लड़कियों एवं

महिलाओं को पानी लाने के लिए काफी दूर जाना पड़ता है। उन्हें वहां कई तरह की जोखिमों का सामना भी करना पड़ता है। पानी की उपलब्धता कम होने से वे माहवारी अथवा अन्य समय में साफ-सफाई का उचित प्रबंध नहीं कर पाती है और वे कई तरह की यौन बीमारियों से भी ग्रसित हो जाती है।

आज बच्चे भी जलवायु संकट को जानने लगे हैं, समझने लगे हैं। इन खतरों से निपटने के लिए जरूरी है कि भविष्य के लिए उन्हें तैयार किया जाय। जलवायु परिवर्तन का सामना करने की दिशा में उनकी बड़ी भूमिका हो सकती है। आसन्न खतरों से वे भी वाकिफ है। अपने क्षेत्र की स्थिति, संसाधनों की उपलब्धता एवं अपनी आवश्यकता के अनुरूप कोई भी योजना का निर्माण करने में वे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। केवल पाठ्यक्रम में पर्यावरण को शामिल करने से यह संभव नहीं हो पायेगा। अतः जरूरी है कि क्लासरूम शिक्षा के साथ-साथ उन्हें व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाय। ग्रामीण बच्चे तो भी अपने परिवेश से वाकिफ होते हैं। अपने आस-पास के पेड़-पौधे को वे पहचानते भी हैं और उनकी उपयोगिता भी जानते हैं। पर शहर में रहने वाले बच्चे इन सबसे महरूम होते हैं। शहर में यदि पेड़-पौधे हैं तो उन्हें काटकर बड़े-बड़े अपार्टमेंट बनाये जा रहे हैं जिससे पर्यावरणीय क्षति तो हो ही रही है बच्चे व्यावहारिक ज्ञान से भी वंचित हो रहे हैं। बच्चों को जंगल की महत्ता को समझाना होगा। पेड़-पौधे लगाने के लिए उन्हें उत्साहित करना होगा। जैविक खेती के प्रति उनको रूझान को बढ़ाने की जरूरत है और सबसे जरूरी है कि बच्चों की राय और अनुभवों को नीतियों में शामिल किया जाय। जलवायु परिवर्तन के कार्यों में बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। भारत जैसे विकासशील देशों में चूंकि इसका असर ज्यादा होने वाला है। अतः बच्चों को भी जलवायु परिवर्तन संबंधी नीति निर्माण और निर्णय प्रक्रिया में भागीदार बनाये जाने की आवश्यकता है। भावी पीढ़ी को तैयार करने से आने वाले खतरों से निपटने में मदद मिल सकती है एवं समाधान की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। ■

दोहरे बोझ से जूझती महिलाएं

सुषमा देवी

जैसा कि हम सभी जानते हैं कि झारखंड की 80 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर आधारित है और खेती मानसून पर आधारित है। जलवायु परिवर्तन के कारण मानसून में भी काफी बदलाव आया है जिस कारण खेती प्रभावित हो रही है। दो साल से लगातार झारखंड में सूखा पड़ रहा है। इसके कई कारण हो सकते हैं। प्राकृतिक भी एवं मानव निर्मित भी। मानव ने अंधाधुंध जंगलों की कटाई की। जंगल कटने के फलस्वरूप बारिश कम होने लगी। खदानों के कारण जमीन भी काफी बर्बाद होता है, ऊपर से प्रदूषण की मार अलग से झेलनी पड़ती है। खेत के लिए जमीन भी कम पड़ रही है। नदियां भी प्रदूषित हो रही है। मैं धनबाद जिले की रहने वाली हूं और यहां पर्यावरण सखी के रूप में कार्य करती हूं। धनबाद एक कोलियरी क्षेत्र है। कोयला उत्खनन के कारण जमीन बंजर होते गया। पेड़-पौधों के लिए पानी नहीं बच पाया और भू-जल स्तर भी काफी प्रभावित हुआ। जलवायु संकट एवं प्रदूषण के बारे महिलाओं से चर्चा करने पर यह बात उभरकर सामने आई कि जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या बनकर उभरी है। इसका प्रभाव सभी के जीवन में पड़ रहा है, पर महिलाओं पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। वह शारीरिक एवं मानसिक रोगी बन रही है।

महिलायें कहती हैं कि पहले हम घर का चावल, दाल, सब्जी बनाकर अपने परिवार को खिलाते थे। पर अब खेती न के बराबर होती है। इससे हमारी आजीविका पर असर पड़ा है। लोग अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए कोलियरी में दिहाड़ी मजदूर का काम करते हैं। दिन भर कोयला खनन एवं उससे जुड़े कार्य करने के कारण उन्हें स्वास्थ्य संबंधी गंभीर संकटों का सामना करना पड़ता है। पैसों की खातिर गैर कानूनी ढंग से कोयला निकालने का

काम बंद पड़े खदानों पर करते हैं। कभी-कभी ये खदान धंस जाते हैं एवं लोग दबकर मर भी जाते हैं। काम न मिलने पर रोजगार की तलाश में पुरुष बाहर पलायन करते हैं। वहां भी इन्हें ठीक ढंग से रोजगार नहीं मिलता। इन सभी परिस्थितियों का सामना महिलाओं को करना पड़ता है। घर के सदस्य बीमार हो जाने पर, उनकी मृत्यु होने पर या काम की खोज में बाहर जाने पर घर की सारी जिम्मेवारी महिलाओं के कंधे पर आ जाती है। उन्हें घर बाहर दोनों का काम संभालना पड़ता है। दोहरा बोझ होने के कारण वे अक्सर बीमार रहने लगती है। बीमारी में भी उन्हें आराम नहीं मिलता है। उन्हें तब भी बाल बच्चों एवं घर के बुर्जुगों के लिए खाना का जुगाड़ करना एवं खाना बनाकर खिलाना पड़ता है। खाना कम पड़ने पर स्वयं भूखी रहती हैं। आर्थिक असुरक्षा के कारण इनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर काफी असर पड़ता है। अगर समय रहते इसका निदान नहीं सोचा गया तो इसका गंभीर परिणाम नयी पीढ़ी को भी झेलना पड़ेगा। इसलिए हमें पर्यावरण संरक्षण हेतु कार्य करने होंगे। ज्यादा से ज्यादा पेड़ लगायें। जंगल की कटाई कम करें। आसपास के वातावरण को प्रदूषित न करें। अगर पर्यावरण ठीक रहेगा तो धरती बचेगी एवं धरती बचेगी तो हम सब बचेंगे। ■

पर्यावरण और प्रदूषण

रेणु कुमारी

पर्यावरण का अर्थ है हमारे चारों ओर का वातावरण जिसमें हम सब निवास करते हैं और यह हवा, पानी, भूमि जैसे कई तत्वों से मिलकर बनता है। पर्यावरण में इन सारे तत्वों का संतुलन महत्वपूर्ण है। यदि इनका संतुलन बिगड़ जाता है या कुछ ऐसे हानिकारक तत्व इसमें मिल जाते हैं जिससे इनमें असंतुलन पैदा होता है। कालांतर में यह असंतुलन पर्यावरण में प्रदूषण का कारण बनता है। प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन, खनन, औद्योगिकरण आदि भी पर्यावरण असंतुलन का बड़ा कारक है। पर्यावरण असंतुलन के कारण जलवायु में भी परिवर्तन हो रहा है। बारिश समय पर नहीं होना, जब मन तब ठंडा पड़ना, अत्यधिक गर्मी पड़ना ही जलवायु परिवर्तन कहलाता है।

जलवायु परिवर्तन से तापमान और मौसम में दीर्घकालिक एवं तात्कालिक बदलाव देखने को मिलते हैं। ज्वालामुखी विस्फोट जैसे घटनायें प्राकृतिक कारण है परंतु 1800 के दशक से मानव निर्मित गतिविधि जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण रही है। मुख्य कारण से कोयला, तेल और गैस जैसे जीवाश्म ईंधन के चलते जो गैस उत्सर्जन होता है उससे भी पृथ्वी का तापमान बढ़ता है। जब हम गाड़ी चलाते हैं, किसी भवन का ठंडा या गर्म करते हैं तो जो गैस निकलती है वह मानव के साथ-साथ जीव-जंतु सभी के लिए हानिकारक है। जंगल के कटने, कल कारखानों से निकलने वाले अवशिष्ट एवं धुंआ आदि से भी पर्यावरण प्रदूषित होता है।

प्रदूषण का मानव जीवन पर बहुत ही गहरा दुष्परिणाम देखने को मिलता है। आज प्रत्येक 5 में से 4 व्यक्ति स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से ग्रसित है। सांस की तकलीफ के साथ-साथ हृदय रोग, बहरापन, सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा, घबराहट एवं कैंसर जैसी घातक बीमारी से जूझ रही है।

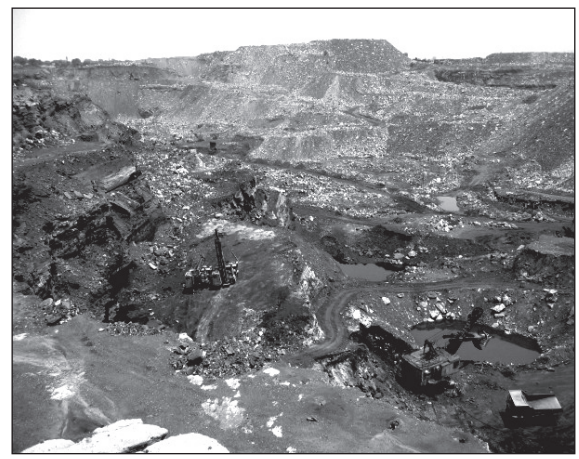

पर्यावरण प्रदूषण का असर जीव-जंतु, पशु-पक्षी में भी पड़ता है। पक्षियों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है। प्रवासी पक्षी भी आजकल कम देखने को मिल रहे हैं। जंगलों के कटने से जानवरों के रहने के स्थान में कमी आई है। जिसके कारण वे जंगल से सटे गांव या शहरों की ओर रूख करते हैं एवं जान माल की क्षति होती है। अगर समय रहते इस समस्या का समाधान नहीं किया जाय तो इसके गंभीर परिणाम झेलने होंगे। इसलिए जरूरी है कि विभिन्न प्रकार के प्रदूषण से बचने एवं पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करने के लिए हमें अधिक से अधिक पेड़-पौधे लगाने होंगे। अपने आसपास के वातावरण को साफ रखना होगा। आबादी वाले क्षेत्र खुले हों, हवादार हो, कल कारखाने आबादी वाले क्षेत्र से दूर लगायें जायें एवं इससे निकलने वाले दूषित जल एवं कचरे के समुचित निपटान की व्यवस्था हो। प्लास्टिक का उपयोग कम से कम करें। सौर ऊर्जा एवं अन्य वैकल्पिक ऊर्जा का उपयोग करें। रासायनिक खेती की जगह जैविक खेती को बढ़ावा दें। सार्वजनिक वाहनों का उपयोग करें। ये कुछ उपाय है जिसे अपनाकर हम प्रदूषण को कम कर सकते हैं। ■

विकल्प की तलाश

दीपमाला

पिछले कुछ वर्षों से बायोमास ऊर्जा पर अत्यधिक निर्भरता को कम करने की दिशा में पहल की जा रही है। यह भी चिन्ता जतायी जा रही है कि बायोमास ऊर्जा के उपयोग से जो प्रदूषण होता है उससे उसे उपयोग करने वाले के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। हम सभी जानते हैं कि भारतीय समाज में खाना पकाने के कार्य की जिम्मेवारी महिलाओं की होती है। बायोमास ऊर्जा पर निर्भरता एवं उपयोगकर्त्ता विशेषकर महिलाओं को शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य संबंधी जटिलताओं से जूझना पड़ता है। इसके अतिरिक्त बायोमास ईंधन इकट्ठा करते समय जोखिमों और खतरों का भी सामना करना पड़ता है।

पर्यावरण सखी के रूप में कार्य करते हुए मैंने अनुभव किया है कि बोकारो जिले में अभी भी लोग कोयले के चूल्हे में खाना पकाते हैं। कोयला यहां प्रचुरता में मिलता है इसलिए लोग उसे प्राथमिकता देते हैं। चूल्हा जलाने में लकड़ी के साथ-साथ प्लास्टिक का भी उपयोग करते हैं। इन ईंधनों के उपयोग करने वाले अधिकांश घरों में धुंआ निकालने के लिए वेंटिलेशन नहीं होते हैं। लोग केवल खाना पकाने हेतु ही कोयले का उपयोग नहीं करते हैं बल्कि आजीविका हेतु इसे बेचने के लिए भी जलाते हैं। आप यदि इस क्षेत्र में आयेंगे तो पायेंगे कि प्रत्येक घरों के बाहर कोयले के ढेर में आग लगायी गयी है। आग लगाने के बाद उसे पानी डालकर बुझाते हैं और फिर बिक्री करते हैं। इस तरह की गतिविधि से वायु प्रदूषण बहुत ज्यादा होता है। श्वसन संबंधी बीमारियां हर घरों में देखने को मिलता है। टी.बी., अस्थमा, जैसी बीमारियां भी लोगों में पायी जाती है।

प्रदूषण के कारण खेती भी प्रभावित होती है। खेती में लगने वाले फसल एवं साग सब्जियों के ऊपर कोयले की राख एवं कोयला का चूर्ण पड़ने से फसल नष्ट हो जाती है। कोयला खनन के कारण जमीन भी कम होती जा रही है। घर के पुरुष लोग खेती करना छोड़ आजीविका के लिए अमूमन बाहर पलायन कर जाते हैं जिससे घर पर रहने वाली महिलाओं पर काम का दोहरा बोझ पड़ता है। पुरुषों के बाहर चले जाने के बाद घर पर महिला अकेले रह जाती है तो घर के कामों के साथ-साथ खेती एवं बाहर के अन्य कार्य भी उन्हें ही करना पड़ता है जिससे उसके स्वास्थ्य पर असर पड़ता है।

प्रदूषण के कारण केवल वायु ही प्रदूषित नहीं होता है बल्कि जल भी प्रदूषित होता है। इसके अलावा गर्मी, सूखा और अत्यधिक तापमान पानी के श्रोतों को सूखा देती है तो महिलाओं को खाना पकाने, स्नान, साफ-सफाई आदि के लिए पानी की खोज में और पानी लाने के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है जिससे उनका काफी समय बरबाद होता है और वे अपने लिए समय निकाल नहीं पाती है। दूषित जल के सेवन से लीवर एवं पेट की अन्य बीमारियों से भी वे ग्रसित हो जाती है।

कुल मिलाकर देखा जाय तो प्रदूषण से महिलाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

वैकल्पिक ईंधन के रूप में लोग गैस चूल्हा का उपयोग करना तो चाहते हैं परंतु गैस सिलेन्डर के महंगा होने के कारण लोग कोयले पर निर्भर है। समय रहते इसके समाधान के उपाय हमें ढूंढ़ने पड़ेंगे। प्रदूषण कम हो इसके लिए आजीविका के विकल्पों की तलाश करनी होगी। ज्यादा से ज्यादा पेड़-पौधे लगाने होंगे। खनन के बाद उस क्षेत्रों में पेड़ लगायें जायें। भूमि जो खराब हो गई है उसे भी खेती के लायक बनाने के लिए खनन कंपनियों पर दबाव बनाना होगा। स्वच्छ एवं पीने योग्य जल की समुचित उपलब्धता भी सुनिश्चित करना होगा। लोगों में जागरूकता फैलाकर इस समस्या को कम किया जा सकता है। ■

जलवायु परिवर्तन और महिला स्वास्थ्य

आमेना खातून

पूरे विश्व में जलवायु परिवर्तन एक भीषण संकट के रूप में हमारे सामने आ चुका है। उसके भीषण परिणामों से कोई भी अछूता नहीं है। निर्बल और हाशिए पर रहने वाले समुदाय जिसमें महिलायें भी हैं, उन्हें विशेष रूप से जलवायु परितर्वन से खतरा है। उन्हें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली घटनाओं से कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। पुरुषों की तुलना में किसी भी महामारी एवं प्राकृतिक आपदाओं में महिलाओं व बच्चों की मौत की संभावना 14 गुना अधिक होती है। जलवायु परिवर्तन ने आजीविका के साधनों पर भी प्रभाव डाला है। आजीविका के साधन कम हो रहे हैं। परिवार में भोजन की कमी हो सकती है। हम सभी जानते हैं कि भारतीय समाज में भोजन पकाने एवं खिलाने की जिम्मेवारी महिलाओं की होती है। महिलायें पहले दूसरों को खिलाती है, अपने बाद में खाती है। प्रायः घरों में देखा जाता है पर्याप्त भोजन नहीं रहने के कारण महिलायें भूखी रह जाती है जिससे वे एनीमिया एवं अन्य बीमारियों की शिकार होती हैं।

आय कम होने के कारण परिवार अपने घर की बच्चियों को कम उम्र में शादी करने का विकल्प चुनते हैं। इन शादियों के बदले परिवार को धन भी मिलता है और लड़कियों की भविष्य की चिंता से भी वे बच जाते हैं। परंतु लड़कियों के स्वास्थ्य पर इसका विपरीत असर होता है। कम उम्र होने के कारण उनका शरीर एवं मन दोनों गर्भधारण की स्थिति में नहीं होती है जिससे मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में इजाफा होता है। एक शोध के अनुसार प्रसव से पहले वाले हफ्ते में अगर गर्मी के मौसम में एक डिग्री तापमान में वृद्धि होती है तो मृत बच्चे पैदा होने का प्रतिशत बढ़ जाता है।

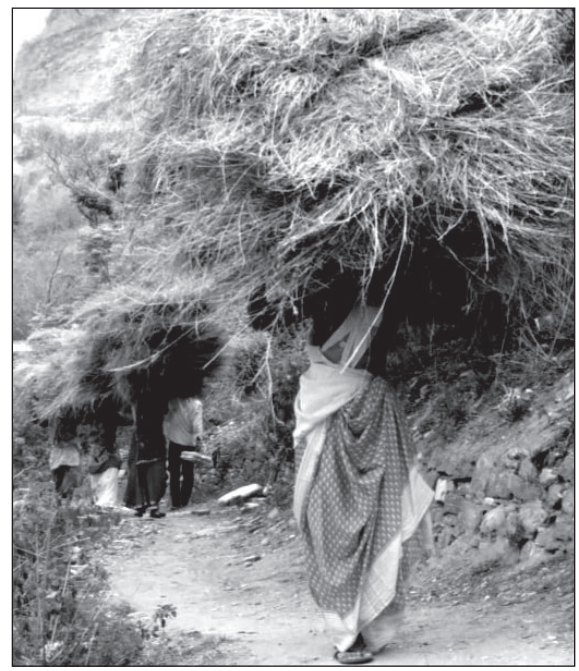

जलवायु परिवर्तन के कारण मलेरिया, डेंगू, चिकन गुनिया जैसी बीमारियां फैल भी रही है एवं वह लंबी भी हो रही है। इन बीमारियों का असर गर्भवती महिलाओं और उनके बच्चें को ज्यादा झेलना पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के कारण जीका वायरस जैसी बीमारियां फैल रही है जिससे गर्भ में होने वाले बच्चे ठीक ढंग से विकसित नहीं हो पाते हैं उनका सिर छोटा होता है।

स्वच्छ वातावरण और उचित साफ-सफाई के अभाव में वे यौन संबंधी बीमारियों की भी शिकार बनती है। कुल मिलाकर देखा जाय तो महिला स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में घातक ही है। अगर समय रहते इसका समाधान एवं इसे कम करने के उपाय नहीं सोचा गया तो इसके परिणाम भयावह हो सकते हैं। ■

सूखे से सहमी खेती और भूख की चपेट में महिला

सीता देवी

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह प्रकृति पर निर्भर होता है। इनमें से कुछ प्रकृति प्रदत्त वस्तुएं जैसे – जल, हवा, धरती इत्यादि मानव जीवन हेतु अत्यंत आवश्यक हैं। प्राकृतिक संसाधन प्रकृति द्वारा दी गयी ऐसी वस्तुएं हैं जिनका उपयोग मनुष्य अपने रोजाना की जरूरतों को पूरा करने के लिए करता है। हालांकि समय के साथ-साथ, विकास के क्रम में प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं रख-रखाव के तरीकों में बदलाव आता गया। भारत द्वारा नयी आर्थिक नीति अपनाये जाने के बाद पानी के निजीकरण की शुरूआत, जमीन अधिग्रहण कुछ इसी तरह के बदलाव को इंगित करते हैं। कुछ समय के बाद शायद प्राकृतिक हवा का भी निजीकरण हो जाएगा। क्योंकि कोरोना काल में जिस तरह से ऑक्सीजन सिलेंडर के लिए मारा-मारी हो रही थी, उस हिसाब से वह दिन भी शायद लोगों को देखना पड़ जाएगा।

मैं सीता देवी, पंचायत बोड़िया, बेरमो की पर्यावरण सखी हूं। क्षेत्र में वायु प्रदूषण पर काम करते हुए मैं वहीं एक आदिवासी महिला कांता से मिली। जो कि पहले जंगल के निकट रहती थी। वह जंगल से लकड़ियां लाकर वह घर में खाना बनाती एवं जंगल से खाद्य पदार्थ इकट्ठा करती और अपनी जरूरत के बाद बचा वनोपज स्थानीय बाजार में बेचती थी। उसने बतलाया कि गांव वालों के काफी विरोध के बाद भी, जंगल और आस-पास के इलाके को खनिज उत्खनन के लिए एक खनन कंपनी को बेच दिया गया। इससे वहां भूजल स्तर बुरी तरह से प्रभावित हो गया। गांव में सूखा पड़ने लगा और पेड़- पौधों के लिए पानी नहीं बचा। यह संकट तेजी से भोजन की कमी और आर्थिक परेशानियों में बदल गया। ऊपर से

मौसम की अनिश्चितता के कारण खेत सूखने लगे। खेती करना मुश्किल हो गया। परेशान होकर वह अपने परिवार के साथ शहर आ गई। उसका पति दिहाड़ी मजदूर है। रोजगार की तलाश में यहां-वहां भटकती रही। पर उसे काम नहीं मिला। कहीं मिला भी तो काम देने वालों द्वारा शोषण किए जाने पर, उसने शहर के कचरे के ढेर से और अन्य उपेक्षित क्षेत्रों से प्लास्टिक की बोतलें जमा करना शुरू किया। लगातार धूप और तेज गर्मी में कचरा बीनने के कारण वह अक्सर बुखार और शरीर में पानी की कमी का शिकार हो जाती थी और चिकित्सा सुविधाओं तक उसकी पहुंच भी नहीं थी।

अभी कांता अपने परिवार के साथ एक छोटी सी झोपड़ी में रहती है। बहुत ही मुश्किल से अपने परिवार का खर्च चला पा रही है। कांता किसी तरह अपनी थोड़ी सी कमाई से गुजारा करने को मजबूर है। इस कारण दूसरे के फेंके हुए पेड़ की टहनियों, पत्तियों और कागज जैसे सूखे कचरे जिन्हें वह चुनकर लाती है, से खाना बनाती है। झोपड़ी के हवादार नहीं होने और खाना पकाने के लिए लकड़ी और कचरा का इस्तेमाल करने के कारण सांस लेने के दौरान बहुत सा धुंआ उसके शरीर में जाता है जो उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

अनुकूल जलवायु के कारण ही पृथ्वी पर जीवन संभव हो पाया है। लेकिन मनुष्य द्वारा प्रकृति के साथ की जा रही छेड़छाड़ के कारण जलवायु में निरंतर बदलाव आता जा रहा है। महिलाएं इससे बहुत अधिक प्रभावित हो रही हैं। यदि हम आदिवासियों का जीवन देखें तो हम पायेंगे कि चाहें कहीं के भी आदिवासी हों उनके रहन-सहन, सरोकार एक जैसे होते हैं। उनके लिए जंगल ही उनका घर-परिवार होता है। क्या पुरूष, क्या महिलाएं यहां तक कि बच्चे भी जंगल को बचाने में जी-जान से जुट जाते हैं। क्योंकि जंगल उनके जीवन, संस्कृति, रीति-रिवाज आदि को सक्रिय करता है। आदिवासी जीवन की चेतना जंगल से ही संभव है। आदिवासी महिलाएं जंगलों में जाकर घर के लिए कंद-मूल इकट्ठा करती हैं। जलावन के लिए लकड़ियों की व्यवस्था करती हैं। इस प्रकार जंगल उनके लिए प्रकृति का अनुपम उपहार है। लेकिन विकास के बहाने जिस तरह से जंगलों की कटाई हो रही है, उससे महिलाओं की जीविकोपार्जन की संभावनाएं खत्म होती जा रही है।

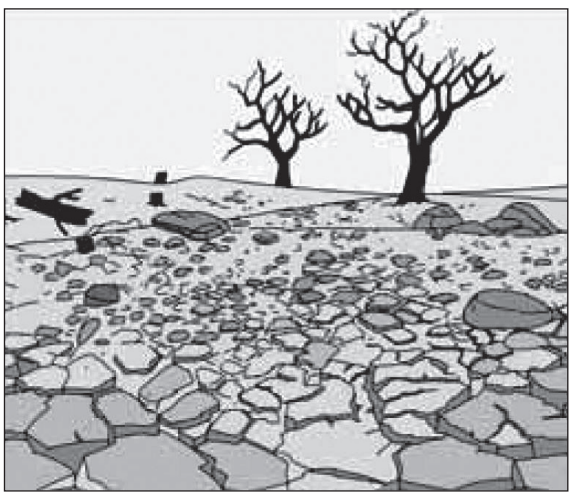

हाल के दिनों में छत्तीसगढ़ के हंसदेव जंगल को खत्म कर वहां पर खनन के काम के लिए तैयार किया जा रहा है। खनन के काम से वैसे भी कार्बन उत्सर्जन ज्यादा होता है। पेड़-पौधों के कटने से ऑक्सीजन की कमी होगी। समस्त प्राकृतिक संसाधन और संपदाएं बेकार हो जाएंगे अगर उनका सही इस्तेमाल करनेवाले लोग न हों। ■

अभी खूँटी में टाँगकर रख दो माँदल

ऐ मीता!
मत बजाओ
जब-तब बाँसुरी

कह दो अपने संगी-साथी से
बजाए नहीं असमय ढोल माँदल

रसोई में भात पकाते
थिरकने लगते हैं मेरे पाँव
मन उड़ियाने लगता है
रूई के फाहे-सा दसों दिस

अभी बहुत सारा काम पड़ा है
घर-गृहस्थी का
गाय गोहाल के गोबर में फँसी है
लानी है जंगल से लकड़ियाँ भी
घड़ा लेकर जाना है पानी लाने झरने पर
और पहुँचाना है खेत पर बापू को कलेवा

देखो सब कुछ गड़बड़ हो जाएगा
सुननी पड़ेगी माँ से डाँट
इसलिए मेरा कहा मानो
अभी रख दो छप्पर में खोंसकर बाँसुरी
टाँग दो खूँटी पर माँदल
और लाओ अपनी कला
अँचरा में बाँधकर रख लूँ मैं

लौटा दूँगी वापस बँधना में
तब जी भरके बजाना
मैं भी मन-भर नाचूँगी संग तुम्हारे

तब तक के लिए लाओ
तुम्हारी कला
अँचरा में बाँधकर रख लूँ मैं!

- निर्मला पुतुल

झारखंड में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर चुनौती

गुलाब चंद्र

झारखंड राज्य प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य है। झारखण्ड में आदिवासी और गैर-आदिवासी लोग संस्कृति और परंपराओं के साथ रहते हैं। झारखण्ड की जलवायु उष्णकटिबंधीय होने के कारण यहाँ वर्षा बंगाल की खाड़ी और अरब सागर की मानसूनी हवाओं के कारण होती है। यहाँ के लोग खेती करके अपना जीवनयापन करते हैं। पिछले दशकों से मौसम में बदलाव देखने को मिल रहा है। झारखंड में जलवायु परिवर्तन के कारण स्थापित कृषि व्यवस्था, जल संसाधन और वनों पर विशेष प्रभाव पड़ा है, खासकर झारखंड के 24 जिलों में इसका व्यापक असर देखा जा रहा है। जिसमें झारखंड के 6 जिले ऐसे हैं, जहां जलवायु परिवर्तन का कृषि-फसल चक्र पर व्यापक और प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। झारखंड में वर्षा का जल चक्र बदल रहा है। वर्षा में परिवर्तन के कारण झारखंड सूखा प्रभावित क्षेत्र बनता जा रहा है, जिसके कारण आने वाले समय में इन क्षेत्रों को काफी समस्याओं का सामना करना पड़ेगा, जलवायु परिवर्तन के कारण खेती में भी बदलाव आया है। झारखंड के कई जिले सूखे की चपेट में हैं और खेती की कमी के कारण पलायन बढ़ रहा है। पुरुषों को गांव से बाहर दूसरे राज्यों में पलायन करना पड़ रहा है, जिससे गांव की महिलाओं पर बोझ बढ़ रहा है। महिलाओं को जोखिमों का सामना करना पड़ता है। झारखंड में जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा चक्र में बदलाव आया है, नदियों में पानी की कमी बढ़ रही है, जंगलों में आग लगने की प्रवृत्ति बढ़ी है, जंगल की उपज कम हो रही है, वन प्राणियों और पौधों की कई प्रजातियाँ विलुप्त हो रही हैं, श्रम उत्पादकता घट रहा है। इसके अलावा झारखंड में जलवायु परिवर्तन का खास असर महिलाओं और बच्चों पर पड़ रहा है।

महिलाएं एकाकी जीवन जीने को मजबूर हो रही हैं। इसका कारण बारिश की कमी के कारण कृषि कार्य में कमी आना है। ग्रामीण काम और रोजगार की तलाश में दूसरे राज्यों में जाते हैं तो गांवों में पुरुषों और लड़कों की संख्या कम होती है, जिसके कारण महिलाओं को परिवार की देखभाल से लेकर राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक सभी क्रियाकलापों में काम करना पड़ता है। और सामाजिक गतिविधियों के साथ महिलाओं पर खाना पकाने के लिए ईंधन उपलब्ध करने का दबाव बढ़ रहा है। समय पर बारिश नहीं होने के कारण झारखंड के कई जिलों में सूखे का क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। यह झारखंड के लिए गंभीर और चुनौतीपूर्ण मुद्दा है। इस मुद्दे पर गंभीरता से चर्चा करने की जरूरत है। समस्या के समाधान के लिए राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक योजनाओं की जरूरत है। झारखंड में जलवायु परिवर्तन के कारण गर्मी के मौसम में झारखंड के कई इलाकों में तापमान औसत से ऊपर रहता है। कभी झारखंड के रांची एवं नेतरहाट को ग्रीष्मकालीन राजधानी कहा जाता था। लेकिन झारखंड में औद्योगिक विकास की शोषणकारी प्रवृत्ति तथा कोयला खनन और बिजली उत्पादन में प्राकृतिक दृष्टिकोण न अपनाकर पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने की प्रवृत्ति झारखंड में जलवायु परिवर्तन

का कारण देखा जा रहा है जिससे झारखंड के जलचक्र और वायु चक्र के साथ-साथ जीवन की खाद्य श्रृंखला में भी बदलाव देखा जा रहा है तथा झारखंड में उत्पादित होनेवाली पारंपरिक कृषि फसलें भी बदल गयीं। झारखंड में मोटे अनाज के रूप में उत्पादित अनाज की कमी का असर यह हुआ कि झारखंड के गांवों में रहने वाली महिलाओं और बच्चों में कुपोषण बढ़ी है। झारखंड की अनुकूल जलवायु की भिन्नता का श्रेय इसकी समृद्ध संस्कृति और परंपराओं को दिया जा सकता है। झारखण्ड अपनी प्राकृतिक सुंदरता और नदियों, झरनों, पहाड़ों के साथ-साथ जंगली जानवरों के लिए जाना जाता है, लेकिन आज जलवायु में बदलाव के कारण यह चिंता का विषय बनता जा रहा है। झारखंड की प्रमुख नदी दामोदर है, जिसके बारे में कहा जाता है कि नदी की पेट में ऊर्जा है। दामोदर में जल के अथाह भंडार के कारण यह इसे दामोदर कहा जाता है और व्यवहारिक रूप से अगर हम झारखंड की दामोदर नदी को देखें तो हम दामोदर के उद्‌गम से लेकर बंगाल की खाड़ी तक ऊर्जा की असीम भंडार संचित है। आज झारखंड की नदियों एवं जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को देख सकते हैं। जल स्तर दिन-ब-दिन कम होता जा रहा है, हालांकि झारखंड की नदियों पर कई बांध बनाकर पानी को रोकने का प्रयास किया गया है, लेकिन जिस तरह से झारखंड में वर्षा चक्र अवरुद्ध हो गया है जिसके कारण झारखंड की कई नदियों की जल स्तर में गिरावट आ रही है। कई सूख गये हैं। कई जलस्रोत समाप्त हो गये हैं। झारखंड में नदियों का सूखना, जलस्रोतों का नष्ट होना और भूमिगत जल स्तर का कम होना तथा जंगल में आग लगने की बढ़ती प्रवृत्ति, वन उपज में कमी एक गंभीर चुनौती का संकेत है। जलवायु परिवर्तन का असर झारखंड में दस्तक दे चुका है। अगर हमने जलवायु परिवर्तन की चुनौती को गंभीरता से नहीं लिया और इसे कम करने के प्रयास तेज नहीं किये तो आने वाले समय में झारखंड की कई नदियों, नालों, झीलों और जंगल पहाड़ों का प्राकृतिक स्वरूप बदल जाएगा। ■

जलवायु संकट के राजनीतिक मायने

पल्लव आनंद

औद्योगिक क्रांति ने आर्थिक और तकनीकी प्रगति के लिए जीवाश्म ईंधन के प्रयोग को बढ़ावा दिया। विकसित देशों ने जीवाश्म ईंधन का जमकर दोहन किया। औद्योगिक क्रांति के बाद से जीवाश्म ईंधन ने आर्थिक और तकनीकी विकास के लिए ऊर्जा का मुख्य स्रोत प्रदान तो किया परंतु इससे दुनिया का तापमान पहले की तुलना में 1.1 या 1.2 डिग्री सेल्सियस बढ़ गया। परिणाास्वरूप ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन से वायु संकट की विषम परिस्थिति निर्मित हुई। कुछ देश चाहते हैं कि जीवाश्म ईंधन का प्रयोग पूरी तरह बंद न करके धीरे-धीरे इनका इस्तेमाल कम किया जाए। जबकि यूरोपीय संघ का मानना है कि इन्हें फेज आउट किया जाए यानि इसका इस्तेमाल तुरंत बंद किया जाए।

1970 के दशक में जलवायु परिवर्तन एक राजनीतिक मुद्दा बनकर उभरा। 1990 के दशक से जलवायु परिवर्तन को कम करने का प्रयास अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के एजेंडे का प्रमुख मुद्दा बन गया और यहीं से संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन चलने लगे। इन वार्षिक आयोजनों को पार्टियों का सम्मेलन (सीओपी) भी कहा जाता है।

1990 के दशक में, जब जलवायु परिवर्तन पहली बार राजनीतिक एजेंडे पर प्रमुखता से उभरा, तो आशा था कि इस समस्या से सफलतापूर्वक निपटा जा सकता है। ओजोन परत की रक्षा के लिए 1987 के मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर ने संकेत दिया था कि दुनिया वैज्ञानिकों द्वारा चेतावनी दिए गए खतरे से निपटने के लिए सामूहिक रूप से कार्य करने में सक्षम थी।

प्रमुख ऐतिहासिक सीओपी 1997 क्योटो प्रोटोकॉल, 2009 कोपेनहेगन शिखर सम्मेलन और 2015 पेरिस सम्मेलन थे। शुरुआत में क्योटो को आशाजनक माना गया था, फिर भी 2000 के दशक की शुरुआत तक इसके परिणाम निराशाजनक साबित हुए थे। कोपेनहेगन ने प्रतिबद्धताओं के एक बहुत मजबूत पैकेज के साथ क्योटो से आगे बढ़ने का एक बड़ा प्रयास देखा, फिर भी काफी हद तक विफल रहा।

जलवायु संकट से जुड़ी राजनीति की जब हम बात करते हैं तो इसके मुख्य पहलुओं में एक है जलवायु संकट से निपटने के प्रयासों के लिए विकसित देशों द्वारा जिम्मेदारी कम लेना और विकासशील देशों पर आवश्यकता से अधिक बोझ देने की कोशिश। उदाहरण के लिए 2016 में संपन्न ऐतिहासिक पेरिस समझौते में यह प्रतिबद्धता थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका को 2005 के स्तर से 2025 तक अपने उत्सर्जन को घटाकर 26-28 प्रतिशत तक कम करना है। इसके अलावा अमेरिका सहित सभी विकसित देशों को हरित जलवायु कोष में वर्ष 2020 से प्रतिवर्ष 100 बिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता देनी थी। लेकिन 2019 में अमेरिका ने खुद को इस समझौते से अलग कर लिया। संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में ग्रीनहाउस गैसों का दूसरा सबसे बड़ा उत्सर्जक है। यदि इसके द्वारा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी नहीं की जाएगी तो समझौते के लक्ष्यों को प्राप्त करना मुश्किल होगा। वहीं पिछले वर्ष दुबई में हुए कॉन्फ्रेंस और पार्टीज़ की 28वीं बैठक में भी विकसित और विकासशील देशों के बीच कई बिंदुओं पर असहमतियां बनी रहीं। विकासशील देश चाहते थे कि नुकसान और क्षति के लिए अलग से फंड हो, विकसित देशों ने इसका विरोध किया। विकासशील देश चाहते थे कि क्लाइमेट फाइनेंस के एक हिस्से का इस्तेमाल उन नुकसानों की भरपाई में हो जो पहले ही हो चुके हैं, लेकिन विकसित देशों ने बात नहीं मानी। ये उदाहरण बताते हैं कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन

में अधिक जिम्मेदार विकसित देश इसे कम करने के प्रयासों में किस तरह बचना चाहते हैं। इन घटनाक्रमों को देखकर यह लगता है कि 'जलवायु परिवर्तन जैसे गंभीर संकट पर विकसित देशों की राजनीति ने इसकी गंभीरता कम की है। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न संकट के समाधान के लिए जरूरी है कि विकसित देशों की तरफ से विकासशील देशों को मदद देना और विकासशील देशों के लिए एक नये समझौते पर काम करना समय की मांग है।

अब जलवायु संकट को लेकर विभिन्न देशों में दलगत राजनीति की बात करें तो पश्चिमी देशों में हो रहे चुनावों में जलवायु संकट एक बड़ा मुद्दा बन कर उभरा है। कनाडा के पिछले आम चुनाव में हुई बहसों में जलवायु संकट एक अहम मसले के रूप में छाया रहा। उधर जर्मनी में भी नेताओं से बार-बार ये पूछा गया कि उनके पास जलवायु परिवर्तन को रोकने की क्या योजना है। नॉर्वे में हुए आम चुनाव में वामपंथी पार्टियों की जीत के पीछे जलवायु परिवर्तन रोकने की उनकी कार्ययोजना की बड़ी भूमिका मानी गई है। इन देशों के चुनावों में जलवायु परिवर्तन एक बड़े मुद्दे के रूप में उभरा जिसकी वजह इन देशों में लोगों को पिछले कुछ वर्षों में असहनीय गर्मी और असामान्य मौसम झेलना पड़ा। इसलिए मतदाताओं की निगाह में इस मुद्दे का महत्व बढ़ा है। हालांकि भारत में अबतक राजनीतिक दलों के लिए जलवायु परिवर्तन कोई विशेष मुद्दा नहीं बन पाया है।

कुल मिलाकर कहें तो एक देश अपने आप में जलवायु संकट का समाधान नहीं कर सकता क्योंकि यह एक विश्वव्यापी समस्या है। इसमें विभिन्न राष्ट्रों को एक साथ काम करने की आवश्यकता है ताकि सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय पहलुओं को सही से समझा जा सके और सही समाधान किया जा सके। साथ ही राजनीतिक दलों को भी इस मुद्दे को एक प्राथमिकता बनाने के लिए सही कदम उठाने चाहिए, ताकि हम आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित, स्वस्थ और सामाजिक रूप से समृद्ध भविष्य की दिशा में काम कर सकें। इसमें हर व्यक्ति, समूह और देश का सहयोग आवश्यक है ताकि हम सभी मिलकर इस महासंघर्ष में जीत हासिल कर सकें। ■

आदिवासी साहित्य में पर्यावरण संघर्ष

संजय कुंदन

पर्यावरण संरक्षण की असली लड़ाई तो जंगल-पहाड़ पर रहने वाले आदिवासी और अन्य लोग लड़ रहे हैं क्योंकि पर्यावरण को होने वाला नुकसान सीधे उनके जीवन को प्रभावित कर रहा है। पर्यावरण के लिए उनकी लड़ाई उनके लिए गरिमापूर्ण जीवन और न्याय के संघर्ष में तब्दील हो गई है और जिसमें प्रकारांतर से जनतंत्र की रक्षा की माँग भी समाहित है। इसलिए यह एक व्यापक संघर्ष हो गया है, जिसमें देश भर के अनेक बुद्धिजीवी भी शामिल हो चुके हैं और साहित्यकारों के लिए भी यह एक बड़ा मुद्दा है। यह मनुष्यता के पक्ष में उठने वाली समस्त आवाज़ों में जगह पा चुका है।

दरअसल साम्राज्यवाद-बाजारवाद-पूंजीवाद की पोषक सत्ता प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए न सिर्फ प्राकृतिक परिवेश को छिन्न-भिन्न कर रही है बल्कि इसका विरोध कर रहे लोगों को भी तरह-तरह से निशाना बना रही है। इसके लिए उसने सीधे-सीधे प्रभावित लोगों को प्रताड़ित करने के साथ-साथ विकास का एक विमर्श भी छेड़ रखा है, जो वर्चस्ववाद का ही विस्तार है। चूँकि समकालीन हिंदी कविता का मूल स्वभाव राजनीतिक है और यह राजनीति कमज़ोर व्यक्ति की राजनीति है, लिहाजा आज पर्यावरण रक्षा का यह संघर्ष हिंदी कविता में प्रमुखता से जगह पा रहा है।

हाल के दशकों में हिंदी कविता का दायरा विस्तृत हुआ है और इसमें बड़ी संख्या में आदिवासी कवि उभरकर आए हैं और 'हिंदी आदिवासी कविता' के रूप में एक विशिष्ट धारा हिंदी कविता की व्यापक धारा का हिस्सा बनी है। इन कवियों ने जल, जंगल, ज़मीन के संघर्ष को करीब से देखा है इसलिए उनकी कविताओं में इस लड़ाई के बेहद प्रामाणिक चित्र आये हैं। उनकी कविताओं में विकास को लेकर जहाँ तीखी बहस मिलती है वहीं नष्ट होती प्रकृति

"साम्राज्यवाद-बाजारवाद-पूंजीवाद की पोषक सत्ता प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए न सिर्फ प्राकृतिक परिवेश को छिन्न-भिन्न कर रही है बल्कि इसका विरोध कर रहे लोगों को भी तरह-तरह से निशाना बना रही है। इसके लिए उसने सीधे-सीधे प्रभावित लोगों को प्रताड़ित करने के साथ-साथ विकास का एक विमर्श भी छेड़ रखा है, जो वर्चस्ववाद का ही विस्तार है।"

का हाहाकार भी मिलता है। कवि के भीतर व्याकुलता रहती है कि प्रकृति का सौंदर्य पता नहीं कितने दिन बचा रहेगा।

सभी आदिवासी कवियों ने प्रकृति के साथ अभिन्न रूप से जुड़े अपने जीवन के प्रति गहरा लगाव, आत्मीयता और अपने जीवन मूल्यों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता दर्शायी है। वंदना टेटे लिखती हैं -

हम सब/इस धरती की माड़/इस सृष्टि के हाड़/हमारी हड्डियाँ/विंध्य, अरावली और नीलगिरि/हमारा रक्त/लोहित, दामुदह, नरमदा और कावेरी/हमारी देह/गंगा-जमना-कृष्णा के मैदान/हमारी छातियाँ/जैसे झारखण्ड के पठार/और जैसे कंचनजंघा/हम फैले हुए हैं/हम पसरे हुए हैं/हम यहीं इसी पुरखा ज़मीन में/धँसे हैं सदियों से/हमें कौन विस्थापित कर सकता है/सनसनाती हवाओं और तूफ़ानों-सी/हमारी

ध्वनियों-भाषाओं को/कौन विलोपित कर सकता है/कोई इनसान?/कोई धर्म?/कोई सत्ता?/सिंगबोंगा (सूरज) और चांदबोङा को/इस जवान धरती को/कौन हिला सकता है/कह गई है पुरखा बुढ़िया/कहां गया है पुरखा बूढ़ा/कोई नहीं, कोई नहीं ...

महादेव टोप्पो बताते हैं कि प्रकृति से ही आदिवासियों ने जीवन का ज़रूरी पाठ सीखा है। किताबी ज्ञान से वे भले ही अपरिचित हों, पर जीवन के लिए जरूरी दृष्टि की उनके पास कोई कमी नहीं है:

कुएं के पास/पानी पीकर/गर्मियों में/मधुमक्खियों के/उड़ने की ऊंचाई देखकर/मेरे गांव में बच्चे/पता लगा लेते हैं/कहां और कितनी दूरी पर/मिलेगा मधु का छत्ता/और वहां कितना है मधु/जब भी वे इन छत्तों से/निकालते हैं मधु/चखा जाते हैं मुझे मधु का स्वाद/जाहिर है-/सबको मालूम है/वे बच्चे स्कूल नहीं जाते/लेकिन पढ़ लेते हैं/मधुमक्खियों के अलावा/वनस्पतियों से,/जीव जंतुओं, चींटी या मधुमक्खी से/जीने के जरूरी कई कई पाठ।

बहुत सारी कविताओं में प्रकृति बस स्मृति के रूप में आती है क्योंकि वह लगातार नष्ट हो रही है। युवा कवयित्री जसिंता केरकेट्टा की यह कविता इसका एक उदाहरण है: मैंने नन्ही पीढ़ी से कहा,/देखो, यही थी कभी गाँव की नदी।/आगे देख ज़मीन पर बड़ी-सी दरार/मैंने कहा, इसी में समा गए सारे पहाड़।/अचानक वह सहम के लिपट गई मुझसे/सामने दूर तक फैला था भयावह क़ब्रिस्तान।/ मैंने कहा, देख रही हो इसे?/यहीं थे कभी तुम्हारे पूर्वजों के खलिहान।

ये पंक्तियाँ एक भयावह भविष्य की ओर इशारा करती हैं। इनमें यह आशंका व्याप्त है कि कहीं आज जो कुछ बचा है, वह भी नष्ट न हो जाए। आदिवासी कवियों ने प्रकृति के साथ अपने जीवन की विडम्बनाओं के भी मार्मिक चित्र खींचे हैं। अपनी एक कविता में निर्मला पुतुल लिखती हैं:

तुम्हारे हाथों बने पत्तल पर भरते हैं पेट हज़ारों/पर हज़ारों पत्तल भर नहीं पाते तुम्हारा पेट/कैसी विडम्बना है कि/ज़मीन पर बैठ बुनती हो चटाईयाँ/और पंखा बनाते टपकता है/तुम्हारे करियाये देह से टप....टप...पसीना...!/ क्या तुम्हें पता है कि जब कर रही होती हो तुम दातुन/तब तक कर चुके होते हैं सैकड़ों भोजन-पानी/तुम्हारे ही दातुन से मुँह-हाथ धोकर ?

यह पूरी अर्थव्यवस्था और विकास पर एक सवाल है। आख़िर आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी देश के एक बड़े तबके को जीवन की बुनियादी सुविधाएँ भी मयस्सर नहीं हैं, जबकि यह तबका अपने श्रम से दूसरों के लिए तमाम सुविधाएँ जुटा रहा है। निर्मला पुतुल की कुछ और पंक्तियाँ देखें:

बाबा!/मुझे उतनी दूर मत ब्याहना/जहाँ मुझसे मिलने जाने खाति़र/घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें/मत ब्याहना उस देश में/जहाँ आदमी से ज़्यादा/ईश्वर बसते हों/जंगल नदी पहाड़ नहीं हों जहाँ/वहाँ मत कर आना मेरा लगन

यह आदिवासी जीवन के मर्म को व्यक्त करने वाली कविता है। प्रकृति की गोद में रहने वाले लोग अपने सहज परिवेश में सरल जीवन जीना चाहते हैं। एक लड़की इस बात से डरती है कि वह जंगल-पहाड़ से दूर न हो जाए। वह तथाकथित विकसित समुदायों के सभ्य होने के दावों पर तंज कसती है और कहती है कि उसे आदमी पसंद हैं ईश्वर

नहीं। हमारा सभ्य समाज उन्हें पिछड़ा मानता है और खुद को मुख्यधारा कहता है। इस कथित मुख्यधारा पर करारा प्रहार करते हुए महादेव टोप्पो लिखते हैंः

जैसे ही मुख्यधारा में तुम्हारे/चाहता हूं करना प्रवेश/मुझे दिखते हैं/मुख्य-धारा के द्वार पर/कई असभ्य, अमानवीय, और ढेरों चेहरे क्रूर/फिर भी कर साहस, समेट हिम्मत/बह चुका हूं दूर तक बहुत/मुख्य-धारा में तुम्हारे/और देख रहा हूं अब/अक्षर–दूरबीन के सहारे/न तो वहाँ पवित्रता है/न सहृदयता/न शिष्टाचार/न सहयोग/न स्वच्छता/न सच्चाई/न ईमान/न करुणा/न दया/न एकजुटता/नहीं, वहां वह कुछ नहीं, जिसे समझूं मैं/पवित्रता तुम्हारी मुख्यधारा की/इसलिए चाहता हूं लौटना/तुम्हारी मुख्यधारा से छिटककर/पहाड़ों में बहती क्षीण-धारा के करीब/अपनी कुटिया, अपने गांव में/जहां आदमी कम से कम/आदमी के रूप में नहीं, कोई पशु क्रूर/आदमी ही है अपने चेहरे के अंदर और बाहर ।

आदिवासी कवि साफ कहते हैं कि उन्हें कैसे रहना है, यह वह तय करेंगे। दरअसल वह गैर आदिवासी समुदाय या शासक वर्ग की श्रेष्ठता ग्रंथि को चुनौती देते हैं और यह ऐलान करते हैं कि प्रकृति से तदाकार उनके जीवन में किसी तरह की छेड़छाड़ की गई तो वे बर्दाश्त नहीं करेंगे और अपने हक़ के लिए लड़ेंगे।

अनुज लुगुन कहते हैंः माँ के वक्ष-सा/भू पर बिखरे पर्वत/आसमान को थाह लेने की आकांक्षा में/ज़मीन पर खड़े वृक्ष/धूप में सूखती नदी के गीले केश/पान कराते हैं जो दैनिक/चिड़ियों और जानवरों के आहट से संगीत/मूक खड़े कह रहे हैं/कातर दृष्टि से-/मत ललकारों हमें/मूक हैं किन्तु/अपना अधिकार मालूम है/जो भी प्रतिक्रिया होगी/वह प्रतिशोध नहीं/हक़ की लड़ाई होगी/क्यों तोड़ रहे हो/हमारे घरौन्दों को/हमें क्यों सिमटा कर रख देना चाहते हो/क्या ये जग केवल तुम्हारा है?/न तेरा न मेरा/हम दोनों का यह संसार/कुछ कहता हमसे मूक संसार।

ग्रेस कुजूर की कविताओं में एक गहरा आवेग है। उनका मानना है कि बिना आक्रामक हुए आदिवासियों को उनका हक नहीं मिलेगा। प्रकृति पर हुए हमले और संसाधनों की लूट के विरुद्ध वे कठोर शब्दों में कहती हैं- हे

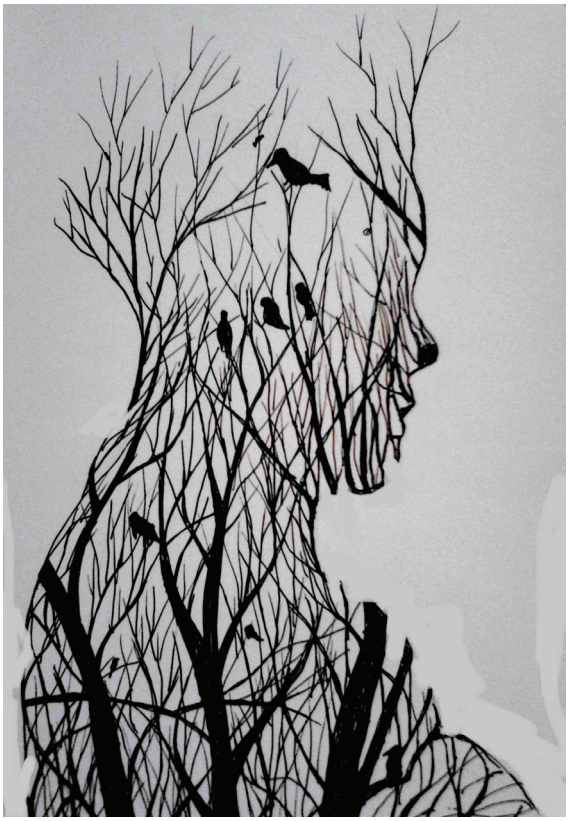

संगी/क्यों घूमते हो/झुलाते हुए खाली गुलेल/क्या तुम्हें अपनी धरती की/सेंधमारी सुनाई नहीं दे रही?/क्या अब भी निहारते हो/अपने को/दामोदर और स्वर्ण रेखा के/काले जल में/किसने की है चोरी/भिनसरिया में ढेकी के संगीत की/और उखाड़ी है किसने/आजी के जाने की कील?/'पुटुस' तक को/उखाड़ कर ले जाएँगे लोग/और धन/तुम खोजोगे उसकी बची हुई जड़ों में/अपना झारखंड/हड़िया और दारू से सींचकर/क्या किसी ने उगाया है-/कोई जंगल?'

जाहिर है आदिवासी कविताओं में पर्यावरण को लेकर एक आक्रामक रवैया दिखता है, जो निश्चय ही उनके अनुभव की देन है। शोषण के अंतहीन सिलसिले और लगातार हो रहे वैचारिक हमले ने उन्हें यह रवैया अख्तियार करने पर विवश किया है। इसमें कोई दो मत नहीं कि पर्यावरण रक्षा की असली लड़ाई आम जनता ही लड़ेगी, जिसकी अगुआई आदिवासी समुदाय ही करेगा।

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं)

ग्रीन क्लब : पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन का सामूहिक अभिक्रम

'संवाद' अपने कार्यक्षेत्र के गांवों को हरा भरा बनाने के लिए हमेशा से ही प्रयासरत रहा है। लेकिन यह सपना तभी पूरा होगा जब गांवों में हरियाली आए और हरियाली तभी आएगी जब वहां के बच्चों, किशोर, महिला व युवा वर्ग इसके प्रति जागरूक हो। इसमें ग्रीन क्लब एक महत्वपूर्ण कड़ी साबित हो सकते हैं। इसी वजह से 'संवाद' द्वारा कुल 34 गांवों में ग्रीन क्लब का गठन किया गया है। 34 ग्रीन क्लब के सदस्यों को जागरूक व सशक्त बनाने के लिए एक दिवसीय प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। इन प्रशिक्षण शिविर में इनके सदस्यों को इनकी जिम्मेवारी व ग्रीन क्लब के उद्देश्य के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया। ग्रीन क्लब के सदस्यों को बताया गया कि उनकी प्रमुख जिम्मेवारियां पारम्परिक जैविक खेती का विकास करने के साथ-साथ आस पास के पर्यावरण को स्वच्छ रखने का है। ग्रीन क्लब से जुड़ने वाले किशोर किशोरियों के साथ युवा युवतियों की जिम्मेवारी होगी कि अपने घर के आस पास के क्षेत्र को हरा भरा रखें। साथ ही साथ औषधीय पौधे लगाने, समय-समय पर वृक्षारोपण करवाने की जिम्मेवारी होगी।

शिविर में बताया गया कि ग्रीन क्लब अपने गांव एवं उसके आसपास के पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्द्धन का एक सामूहिक अभिक्रम है। यह अभिक्रम इस बात पर विशेष ध्यान देगा कि गांव और आस-पास के क्षेत्र कैसे हरा भरा रहे? यहाँ के जल और जल स्त्रोत स्वच्छ कैसे रहे? यहाँ की जमीन की परत कैसे उपज के लायक बनी रहे और यहाँ की जमीन में नमी बरकरार रहे। ग्रीन क्लब बनाने का उद्देश्य खेती किसानी के साथ-साथ पशुपालन, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, वनोपज पर आधारित व्यवसाय और घरेलू उद्योग को बढ़ावा देना है।

ग्रीन क्लब के क्रियाकलाप के बारे में बताया गया कि गांव के जल, जंगल और जमीन की देखभाल और उसका सदुपयोग करना, वनोपज और खेती किसानी से उपजी सामग्री पर कुटीर उद्योग खड़ा करना, हरेक गांव में पोषण वाटिका का निर्माण करना, प्रत्येक परिवार में रसोई वाटिका का निर्माण करना, प्रत्येक गांव में परम्परागत बीज भंडार की व्यवस्था करना, हरेक गांव में जैविक खाद का निर्माण करने के लिए वर्मीकम्पोस्ट पीट का निर्माण करना, प्रत्येक गांव में हर साल जीवनोपयोगी पेड़-पौधे लगाना, सामूहिक पशुपालन/कुक्कुट पालन के लिए वातावरण का निर्माण करना, जमीन को कटने से बचाने के लिए मिट्टी पानी बचाव अभियान चलाना, कई गांवों के संकुल का निर्माण कर ग्राम सभा की सहमति और अनुमति से देशज हाट बाजार की व्यवस्था और संचालन करना, हरेक गांव में ग्रीन स्कूल का निर्माण के लिए वातावरण का निर्माण करना इत्यादि।

इन तमाम शिविरों में निर्णय लिया गया कि गांव में गठित ग्रीन क्लब एवं महिला स्वयं सहायता समूह की महिलायें जैविक खाद एवं जैविक कीटनाशक दवा बनाने का प्रशिक्षण लेकर जैविक खेती के प्रयोग की शुरूआत करेगी।

लैंगिक समानता हेतु संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार

'संवाद' द्वारा राज्य के 23 प्रखंडों में लैंगिक समानता हेतु संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार विषयक एकदिवसीय प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। 'इन शिविरों में महिलाओं को मिले संवैधानिक अधिकारों की जानकारी दी गई। प्रतिभागियों को बताया गया कि समाज में महिला और पुरूषों में समानता का अधिकार संविधान में मिला हुआ है, परन्तु जानकारी के अभाव में महिलाओं को तरह-तरह की प्रताड़ना सहना पड़ता है। कानून की जानकारी नहीं होने

के कारण विवाहित महिलाओं को दहेज को लेकर घर से निकाल दिया जाता है तो कभी महिला के पति की मृत्यु होने पर निकाल दिया जाता है तथा उनके पति की संपत्ति उनके सगे संबंधी हड़प लेते हैं। समाज में अभी भी लड़के और लड़कियों में शिक्षा व खानपान में भेदभाव किया जाता है। समाज में लैंगिक समानता बहाल हो, महिलाओं को उनके अधिकार मिल सके, इसी उद्देश्य से इस तरह के प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए जाते हैं। गांव, समाज व परिवार में महिला और पुरूष की समान भूमिका होती है। दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैं। समाज व परिवार में महिलाओं का विशिष्ट स्थान होते हुए भी उन्हें सम्मान नहीं दिया जाता है। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को सिर्फ वस्तु समझा जाता है। आज महिलाओं की सम्पत्ति और विरासत कानून में पहले की तुलना में काफी बदलाव आया है। आजादी तथा संविधान बनने के बाद से कई संशोधन किये गये हैं। महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दिया गया है। देश में हिन्दु धर्म की महिलाओं के लिए लागू विरासत कानून (inheritance law for women) के बारे में भी जानकारी दी गई।

उभरते मुद्दों पर वार्तालाप

उभरते मुद्दों पर स्थानीय जनप्रतिनिधियों एवं सरकारी पदाधिकारी के साथ एक दिवसीय वार्तालाप का कार्यक्रम राज्य के 14 जिलों में ग्राम सभा फेडरेशन (झारखंड) द्वारा आयोजित किया गया। इन कार्यक्रमों में सरकार द्वारा चलाये जा रहे कल्याणकारी कार्यक्रम का लाभ किस प्रकार उठाये जाये इस पर विस्तार से चर्चा की गई। कार्यक्रमों में अपने गांव की समस्या की पहचान कर उसके समाधान का भी रास्ता निकालने की बात कही गई। वास्तव में सरकार जन कल्याणार्थ कई सारी योजनाएं चलाती हैं, लेकिन जानकारी व अन्य कारणों से इनका लाभ सभी को नहीं मिल पाता है। कार्यक्रमों में बताया गया कि पंचायती राज कानून के तहत वार्ड सदस्य, समिति सदस्य, जिला परिषद सभी को बराबर के अधिकार हैं। पंचायती राज कानून के तहत महिलाओं को भी अधिकार मिले हैं तभी महिलाएं आज इतनी संख्या में जीतकर आई है। आज 50% महिलाएं अपनी जीत दर्ज कर

ली हैं। गांव की समस्या पर काम करने के लिए मुखिया, वार्ड सदस्य, समिति सदस्य एवं जिला परिषद सभी को एकजुट होना होगा तभी अपने गांव में अपना राज स्थापित होगा।

भारतीय संविधान के मूल्यों पर जनजागरूकता अभियान

'संवाद' द्वारा किशोरियों को भारतीय संविधान के मूल्यों पर जागरूक करने के लिए प्रखण्ड स्तर पर जनजागरूकता अभियान चलाया गया। अभियान कार्यक्षेत्र के 23 प्रखंड में

चलाया गया जिनमें हर प्रखंड के लिए पांच दिन निर्धारित किया गया। अभियान के तहत एक टीम द्वारा गीत-संगीत एवं नुक्कड़ नाटक के माध्यम से किशोर-किशोरियों को भारतीय संविधान के मूल्यों के प्रति और अधिक जागरूक करने का प्रयास किया गया। अभियान में अलग-अलग स्थानों में टीम द्वारा स्कूलों में जाकर वहां के किशोर-किशोरियों के बीच प्रस्तावना का पाठ पढ़ा गया और शपथ दिलाई गई।

किसान मेला : जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए अभिक्रम

झारखंड की अधिसंख्य आबादी कृषि पर आश्रित है। दो साल से लगातार झारखंड के कई जिले सुखाड़ की चपेट में है, जिस कारण कृषि प्रभावित हुई है। रासायनिक खाद का इस्तेमाल हाइब्रीड बीज इत्यादि ने खेती-किसानी को घाटे का सौदा बना दिया है। रासायनिक खाद के लगातार उपयोग से खेती भी बंजर हो गये हैं। लोग तरह-तरह की बीमारी से ग्रसित हो रहे हैं। बीमारीमुक्त जीवन और खेती किसानी को खुशहाल बनाने के लिए जरूरी है कि हम जैविक खेती करें। जैविक खेती को बढ़ावा और पारंपरिक बीज इत्यादि के संरक्षण संवर्द्धन के लिए 'संवाद' द्वारा हर वर्ष किसान मेला का आयोजन किया जाता रहा है। इस वर्ष भी दिनांक 21-22 फरवरी को लालपुर, मधुपुर में किसान मेला का आयोजन किया गया है। मेले का उद्घाटन झारखंड राज्य के अल्पसंख्यक कल्याण सह पर्यटन मंत्री हफीजुल हसन द्वारा किया गया। वक्ताओं ने अपने वक्तव्य में कहा कि जल, जमीन और जीवन की रक्षा के लिए जैविक खेती बहुत जरूरी है। खेती के माध्यम से

ही लालपुर के किसान आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बने हैं। यहां 12 महीने खेती होती है। भयंकर सूखा के बावजूद किसानों ने अपने मेहनत के बल पर अनाज और सब्जी का उत्पादन किया है। किसान मेला के दौरान ही घनश्याम द्वारा लिखित पुस्तक सिदो-कान्हू का संताली अनुवाद 'हूल रेन मायाम गोहाको' पुस्तक का लोकार्पण भी किया गया। इस पुस्तक का अनुवाद प्रो. सुनील कुमार हांसदा, अन्ना सोरेन एवं आनंद मरांडी ने संयुक्त रूप से किया गया। मेले में फसल प्रदर्शनी, हस्त शिल्प प्रदर्शनी, खेलकूद एवं रात में रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन भी किया गया। दूसरे दिन गोष्ठी का आयोजन किया गया एवं किसानों तथा खेलकूद के विजयी प्रतिभागियों को पुरस्कार प्रदान कर मेले का समापन किया गया।

सामुदायिक नेताओं एवं 'संवाद' के कार्यकर्त्ताओं का शैक्षणिक भ्रमण

अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन द्वारा प्रायोजित जामताड़ा जिले के फतेहपुर प्रखंड में क्रियान्वित ग्राम स्वशासन अभियान परियोजना के तहत सामुदायिक नेताओं व 'संवाद'

के परियोजना कार्यकर्ताओं का त्रि-दिवसीय शैक्षणिक भ्रमण कार्यक्रम 21 से 23 फरवरी को लातेहार जिला के बरवाडीह एवं मनिका प्रखंड और गढ़वा के बरगढ़ प्रखंड में आयोजित किया गया। इस शैक्षणिक भ्रमण में 24 प्रतिभागियों में से 14 परियोजना कार्यक्षेत्र के सक्रिय सामुदायिक सदस्यों ने भाग लिया।

शैक्षणिक भ्रमण के दौरान भ्रमणकारियों को स्थानीय ग्राम सभाओं, समुदाय सदस्यों और वन अधिकार समितियों द्वारा किये गए सफल कार्यों को देखने, समझने और सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। भ्रमणकारियों ने विभिन्न गावों में वन अधिकार समिति और ग्राम सभा के वन अधिकार को लेकर घटनाओं और संघर्ष को स्थानीय समुदाय से सुना, दस्तावेजों को देखा और कार्यशैली को बारीकी से अध्ययन किये। उसी प्रकार मनरेगा, सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम, समुदाय स्तर पर मौजूद सुविधाएँ और सेवा जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, राशन, आधारभूत संरचना, पारम्परिक रीति-रिवाज, आदि को यात्रा के दौरान जनसाधारण तक

पहुंचाने की कोशिश की गई।

भ्रमणकारी दल के सदस्यों ने उक्त ग्राम सभाओं द्वारा अपनाये गए क्रियाकलापों और गतिविधियों को अपने ग्राम सभा और पंचायत में अमल करने की सोच और रणनीति बनाना आरम्भ कर दिया है। भ्रमण दल ने बरवाडीह प्रखंड के केड़ पंचायत के गाड़ी, लुकूमखाड़ एवं केड़, मनिका प्रखंड के जान्हो और बड़गड़ प्रखंड (गढ़वा) के परसवार पंचायत के कालाखजुरी ग्राम सभा सदस्यों से चर्चा की, उनके ग्राम सभा सचिवालय का मुआयना किया, दस्तावेजों का अध्ययन किया, मनरेगा के तहत बाग़-बगीचों को देखा, वन क्षेत्रों, तालाबों, फसल, खेत-खलिहान, आदि में सफलता और समुदाय के कार्यों का अवलोकन किये। वहां के घर, पहनावा, रहन-सहन,

संस्कृति, भाषा, साहित्य, रीति-रिवाज की भी जानकारी प्राप्त और साझा किया।

भ्रमणदल की सबसे बड़ी सीख रही की जिस प्रकार उक्त क्षेत्र के लोग अपनी जमीन का सदुपयोग कृषि कार्यों में लगाते हैं वह आश्चर्यचकित करता है क्योंकि सिंचाई और पानी की कमी तो वहाँ भी है परन्तु लोगों ने अपने अथक प्रयास से प्रायः सभी भूमि पर सालों भर खेती करते हैं और पलायन जैसी चुनौती तक को सफलतापूर्वक चुनौती दे रहें हैं। फतेहपुर क्षेत्र में ऐसा नहीं होता, अमूमन गैर-खरीफ काल में खेत-टांड़ खाली पड़े रहते हैं। इसे अपने स्तर से सुधारने की इच्छा सभी की है।

- आधी दुनिया डेस्क

सुश्री चामी मुर्मू

भारत सरकार की तरफ से झारखंड के सरायकेला-खरसावां जिला के अंतर्गत राजनगर की सुश्री चामी मुर्मू को पद्मश्री पुरस्कार के लिए चयनित किया गया है।

चामी मुर्मू का जन्म वर्ष 1973 में हुआ है। वह सरायकेला-खरसावां जिले के राजनगर ब्लॉक के बाघरायसाय गांव की रहने वाली है। चामी मुर्मू मदर टेरेसा को अपना रोल मॉडल मानकर सामाजिक कार्य की शुरुआत की। दो भाई और एक बहन में सबसे बड़ी चामी मुर्मू ने अपना जीवन महिला सशक्तिकरण और पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में गुजारा है।

सन् 1990 में अपने गांव में चामी मुर्मू ने 'सहयोगी महिला' नामक एनजीओ का गठन किया। इसके बाद इन्होंने सबर जनजाति समेत आदिम जनजाति के महिलाओं को एकत्रित कर उन्हें स्वावलंबी बनाने का काम किया। वर्तमान में 3000 से भी अधिक महिला स्वयं सहायता समूह बनाकर उन्हें बैंक से विभिन्न योजनाओं के तहत ऋण उपलब्ध कराकर रोजगार से जोड़ रही हैं। इसके अलावा दलमा के सुदूरवर्ती तराई क्षेत्र में बसे आदिम जनजाति के परिवार के महिला और बालिकाओं के उत्थान को लेकर भी इन्होंने कई कार्य किए हैं।

तकरीबन 30 वर्षों में इन्होंन 720 हेक्टेयर भूमि पर 30 लाख से भी अधिक पौधे लगाकर पर्यावरण का संरक्षण किया है। राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त पुरस्कारों से नवाजा जा चुका है। वर्ष 1996 में चामी मुर्मू को इंदिरा गांधी वृक्ष मित्र पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वर्ष 2020 में चामी मुर्मू को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर राष्ट्रपति द्वारा नारी शक्ति पुरस्कार प्रदान किया गया।